सिद्ध योग

वर्ष—७
अङ्क—६

संस्थापक 卐 सम्पादक 卐 संरक्षक 卐...

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहनजी महाराज

सितम्बर
१९७४

...िक मूल्य
... रुपया

एक अंक
का
१-५०

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन सवाँई एत्मादपुर (आगरा)

प्रकाशक

इस अंक में :—

पृष्ठ	लेख	लेखक
१.	भूता एव स तत्पतिः	....
२.	हमारा विशेष लेख— विभूतिपाद की विभूतियां	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज
६.	पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्	संकलित
१०.	सती अनुसुइया का श्री सीताजी को धर्मोपदेश	सुश्री उमा शर्मा, (संगीत रत्न)
१३.	योगी ही अविनाशी को देखते हैं	श्री ब्रह्मचारी वीरेन्द्र द्वारा
१७.	वेदामृत — ईश्वर-प्रणिधान	श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज
२२.	महर्षि दयानन्द और योग	श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य'
२८.	वासना का बीज	आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम० ए० एम० एड०
३४.	योग ही जीवन है।	श्री पूर्णचन्द पन्त शास्त्री गिरिनगर (नाहन) हि०प्र०
३६.	सुख-दुख और आनन्द	श्री ओमप्रकाश पालीवाल
४२.	श्री हनुमान टीला (शामली) अस्तित्व और जीर्णोद्धार	श्री पं० सरजीत शर्मा गांधी चौक, शामली
४८.	गुरुदेव के चरण (कविता)	श्री लक्ष्मीशंकर अवस्थी

संयुक्त
सम्पादक
श्री दिव्य

सिद्ध योग

वर्ष ७
अङ्क ६

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं विरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तस्मात्सर्वान् बहुविवदन् योगतात्त्वोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ।।

सितम्बर
१९७४

भूता एव स तत्पतिः

स आदिः सर्व जगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः ।
सर्वं जगद्वयस्य रूपं दिग्वासा कीर्त्यते ततः ।।
गुणत्रयमयं शूलं शूलीयस्माद्बिभर्ति सः ।
अबद्धा सर्वतो मुक्ता भूता एव स तत्पतिः ।।

वे समस्त जगत के आदि हैं इसलिए उनके वंश का वृत्तान्त कौन जान सकता है। समस्त जगत उनका स्वरूप है इसलिए वे दिगम्बर हैं। वे त्रिगुणात्मक शूल धारण करते हैं इसलिए उन्हें 'शूली' कहते हैं। भूत सर्वथा संसार में बद्ध नहीं हैं बल्कि पूर्णतः मुक्त हैं इसलिए वे मुक्त भूतगणों के अधिपति हैं।

हमारा विशेष लेख —

विभूतिपाद की विभूतियां

[योगयोगेश्वर अनन्त श्रीचन्द्रमोहनजी महाराज]

[३]

हमने इससे पूर्व अगस्त मास के अङ्क में विभूतिपाद के विभूतियों का वर्णन करते हुए—'परिणाम त्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम्' इस सूत्र पर व्याख्या लिखते हुए साधक धर्म, लक्षण, अवस्था आदि तीन परिणामों के अन्दर संयम करता हुआ किस प्रकार से भूत और भविष्य के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है एवं – 'शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभाग संयमात्सर्वभूतरुत ज्ञानम्' इस सूत्र को लिख करके प्राणीमात्र की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने की विधि लिखी थी एवं लेख के उपसंहार रूप में समझाया था कि प्रत्येक साधक को संयमारूढ़ होने के लिए लगातार नियमानुसार अपने अभ्यास को बढ़ाते रहना चाहिए तभी साधक सफलता की उच्चतम् स्थिति को पा सकता है। इससे आगे भगवान् पतंजलिदेव-साधक अतीतकाल में किन-किन जातियों में जन्म लेता हुआ आया है एवं उन उन जातियों में किस-किस प्रकार के कितने-कितने भोग भोगे हैं: यह, (सब प्रकार का) ज्ञान प्राप्त करने के लिए— संस्कार साक्षात्कार की आज्ञा प्रदान करते हैं, वह सूत्र इस प्रकार से है—

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजाति ज्ञानम् ।

विभूतिपाद के इस सूत्र पर व्यास भाष्य की पंक्तियां इस प्रकार है :

द्वये खल्वमी संस्काराः = स्मृतिक्लेशहेतवो वासनारूपाः, विपाकहेतवोधर्माधर्मरूपाः, ते पूर्वभवाभिसंस्कृताः परिणामचेष्टानिरोधशक्ति जीवनधर्मवदपरिदृष्टाश्चित्तधर्माः तेषु संयम संस्कार-साक्षात्क्रियायै समर्थः, न च देशकालनिमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करण,तदित्थं संस्कार साक्षात्करणात्पूर्वजाति ज्ञानमुत्पद्यते योगिनः, परत्राप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणात्परजातिसंवेदनम् ।

अर्थात् संस्कार दो प्रकार के माने गये हैं एक संस्कार वे हैं जो स्मृति एवं क्लेश आदि के कारण रहते हैं। स्मृतियों के कारण मैंने अमुक जन्म में अमुक प्रकार की जाति में जन्म लिया, अमुक-अमुक कार्य किये। यह संस्कार स्मृति रूप संस्कार कहलाते हैं और इसी प्रकार से अविद्यादि क्लेशों के कारण बनते हैं। अर्थात् विषय-वासना रूप एवं धर्माधर्म के कारण एवं सुख-दुःख आदि

फलों के उत्पादक रहते हैं। यह संस्कार पूर्व जन्म के ही बने बनाये साधक के मन में प्रकट होते रहते हैं और मनुष्य को प्रेरणा देते रहते हैं। यही संस्कार चित्त के धर्म परिणाम रूप क्रिया वाले, निरोध रूप सामर्थ्यता सहित अर्थात् भोगरूप धर्म वाले देखे गये हैं। इन सबमें संयम किया हुआ साक्षात्कार का कारण होता है। किन्तु देश-काल, निमित्त के अनुभव के बिना उनका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। जिस समय योगी देश-काल-निमित्तादि के साथ साक्षात्कार करने की चेष्टा करता है तो उसे अपनी पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है एवं इसी प्रकार से किसी दूसरे पुरुष के चित्त-धर्मों में संयम करने से योगी को उसका भी पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है। व्याख्यान — इस बात को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए। योगी अपने समाधि काल से पूर्व अपने मन में जब ये संस्कार बनाता है कि मैं अपने पूर्व जाति के ज्ञान को प्राप्त करूँ तो देश-काल, निमित्तादि के साथ अपने पूर्वानुभूत एवं भुक्त संस्कारों की ओर अपने संयमित मन को फेंकता है तो अपने आप ही योगी के सामने उन संस्कारों का उद्बोधन होने लगता है क्योंकि उस समय योगी का चित्त फोटो खींचने वाले एक कैमरे के रूप में होता है। वह किन-किन भोगों को भोगता हुआ आया है क्या उसकी जाति थी, उस समय क्या उसके अनुभूतार्थ थे, वह उसकी समाधि में उस परम गुरु ईश्वर के अनुग्रह से प्रकट होने लगते हैं और वह पूर्व जाति के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इस विषय में योग-दर्शन के सूत्रों पर भाष्य लिखने वाले भगवान व्यासदेवजी ने एक उदाहरण दिया है, जो इस प्रकार से है।

अत्रेदमाख्यानं श्रूयते—भगवतो जैगीषव्यस्यसंस्कार साक्षात्करणाद् दशसु महासर्गेषु जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभवद् अथ भगवानवट-यस्तनुधरस्तमुवाच दशसु महासर्गेषु भव्य त्वादनभिभूत बुद्धिसत्वेनत्वया नरकति-र्य्यग्गर्भसम्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनु-ष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः किमधिकमुपलब्धमिति भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच—दशसु महासर्गेषु भव्य-त्वादनभिभूतबुद्धिसत्वेन मया नरकतिर्य्य-ग्भवं दुःखं सम्पश्यतादेवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत्किञ्चिदनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमि, भगवानावट्य उवाच-यदिदमायुष्मतः प्रधानवशित्वमनुत्तमं च सन्तोषसुखं किमिदमपि दुःखपक्षे निक्षि-प्तमिति ? भगवान् जैगीषव्य उवाच-विषयसुखापेक्षयैवेदमनुत्तमं सन्तोषसुख-मुक्तं, कैवल्यापेक्षया दुःखमेव बुद्धिसत्व-स्यायं धर्मस्त्रिगुणः त्रिगुणश्च प्रत्ययो हेयपक्षे न्यस्त इति दुःखस्वरूपस्तृष्णा-दुःख तन्तुस्तृष्णा दुःख सन्तानापगमात्तु प्रसन्नमबाधं सर्वानुकूलं सुखमिदमुक्तमिति।

अर्थात् इस विषय में पुराणों में एक ये कथा सुनने में आती है कि परमैश्वर्ययुक्त भगवान जैगिषव्य मुनि को संस्कार साक्षात्कार करने से दश महासर्गों के अन्दर होने वाले जन्म परिणाम कर्मों को देखते हुए विवेकज ज्ञान पैदा हुआ। परम ऋषि आवट्य ने जैगिषव्य मुनि से प्रश्न किया कि इन दश महासर्गों के अन्दर भोग-भोगते हुए प्रकाश बुद्धि के द्वारा आपने नरक एवं तीर्यक योनियों में होने वाले गर्भ के दुःख को साक्षात्कार करते हुए बार-बार मनुष्य देवयोनियों में जाकर क्या किया, क्या प्राप्त किया ? इसके उत्तर में भगवान आवटव्य मुनि को जैगिषव्य मुनि ने उत्तर दिया—दश महासर्गों में भोग अवश्यम्भावी होने से मैंने अपने प्रकाशमय बुद्धि के द्वारा नरक एवं तीर्यकादि योनियों में बार-बार जन्म के दुःखों को देखते हुए एवं देव—मनुष्य योनियों में बार-बार उत्पन्न होते हुए जो कुछ भी अनुभव किया वह केवल दुःख ही दुःख था, यही मैं जानता हूँ। इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने पर भगवान् आवट्य मुनि ने जैगिषव्य ऋषि मुनि से पुनः प्रश्न किया :—जीवनकाल में इन्द्रियों को वश में करके जो सन्तोष सुख प्राप्त होता है क्या उसको भी आपने दुःख पक्ष में ही डाल दिया है ? इसके उत्तर में भगवान जैगिषव्य मुनि ने कहा विषय सुख की अपेक्षा ही सन्तोषसुख उत्तम है किन्तु कैवल्य सुख भी दुःख ही है क्योंकि वह त्रिगुण वाली बुद्धि का धर्म है और त्रिगुणात्मक जो ज्ञान है वह त्यागने ही योग्य है क्योंकि इसका कारण दुःख रूप तृष्णा का तार ही है। अतः सन्तोष सुख भी त्याज्य है। भगवान् व्यासदेव ने जैगिषव्य मुनि के इस उदाहरण को देकर ये भली प्रकार समझा दिया कि एक योगी अपने जन्म-जन्मान्तर के किस प्रकार से किस प्रकार से साक्षात्कार कर लिया करता है और वह किस प्रकार संस्कारों का साक्षात्कार करके जन्म-जरा-मरण आदि दुःखों को जान-कर अपने आपको मोहपाश से निकालकर मुक्ति की ओर बढ़ता है। जैगिषव्य मुनि का उदाहरण तो बहुत पुराने इतिहास की बात है। आज भी जो योगी योगाभ्यास परायण हैं वह अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को देखकर दुःख-द्वन्द्व को त्यागकर मुक्ति की ओर बढ़ जाते हैं एवं इस दुःख-द्वन्द्व से छूट जाया करते हैं। वैराग्य का यही एक उत्तम साधन है कि साधक अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को योग-दृष्टि से देखे एवं उन दुःख-द्वन्द्वों से अपने को छुड़ाकर कल्याण-मार्ग की ओर बढ़ाये। भाई-बन्धु स्त्री-पुत्र आदि को एक मोह जनित जाल ही समझे। गर्भोपनिषद् में इस विषय को बिल्कुल स्पष्ट करके समझा दिया है। जिस समय जीव गर्भावस्था में हुआ करता है तो उसे परमगुरु ईश्वर की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है तब वह

समझा दिया है। जिस समय जीव गर्भावस्था में हुआ करता है तो उसे परम गुरु ईश्वर की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है तब वह जीव उस दिव्य दृष्टि को पाकर अपने जन्म-जन्मान्तर के दुःखों को देखकर महाकष्ट पाता है और उन महा-क्लेशों से निकल जाने की घोर प्रतिज्ञायें करता है। वह प्रकरण इस प्रकार है : —

अथ नवमे मासे सर्वलक्षण ज्ञान-करण सम्पूर्णो भवति। पूर्वजातिं स्मरति। शुभाशुभ च कर्म विन्दति। पूर्वयोनि सहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया। आहारं विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः। जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम॥ एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभोगिनः अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्याभि प्रतिक्रियाम्। यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्। यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणम्। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्ति-दायकम्। यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्साङ्ख्यं योगमभ्यसे। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्ति प्रदायकम्। यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम्। अथ योनिद्वारं सम्प्राप्तो यन्त्रेणापीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदा न स्मरति जन्म-मरणानि न च कर्म शुभाशुभं विन्दति॥

अर्थात् नवमा मास जब लगता है तब शरीर बनकर पूरा हो जाता है और वह सभी लक्षणों से सम्पन्न हो जाता है एवं उस दिव्य दृष्टि को पाकर पूर्व जाति को स्मरण करता है। शुभाशुभ कर्मों को समझता है। अपने पूर्व जन्म की हजारों योनियों को देखकर डर जाता है और अपने मन में कहता है अहो! बड़ा आश्चर्य है मैंने बहुत प्रकार के आहार खाये। नाना प्रकार के स्तनों के दूध पिये, बार-बार जन्मा और मरा। ओह! जो मैंने अपने कुटुम्बियों के लिए शुभाशुभ कर्म किये उन सबके कारण मैं अकेला जल रहा हूं। वह सब फल भोगी लोग इधर उधर चले गये, उन सबके कारण मैं अकेला जल रहा हूं। ओह! मैं दुःख के सागर में डूब गया हूं। बचने का कोई भी उपाय नहीं दिखाई देता। यदि अबकी बार मैं किसी प्रकार से योनिद्वार से निकल गया तो मैं महेश भगवान की शरण लूंगा। जिससे मेरे पाप कर्मों का नाश हो जाय और मुझे मुक्ति मिल जाय। यदि मैं अबकी बार योनि-द्वार से निकल गया तो भगवान नारायण की शरण लूंगा जिससे मेरे पाप कर्मों का नाश हो जाय और मुक्ति मिल जाय। यदि अबकी बार मैं योनि द्वार से छूट गया तो मैं सांख्ययोग का अभ्यास करूंगा जिससे मेरे पापकर्मों का नाश हो जाय और मुक्ति मिल

जाय। यदि मैं अबकी बार योनि द्वार से छूट गया तो सनातन ब्रह्म का ध्यान करूँगा जिससे मेरे पापकर्मों का नाश हो जाय और मुक्ति मिल जाय।

इस प्रकार चिन्तन करता हुआ योनिद्वार को प्राप्त कोल्हू में पेरे जाने के समान महान दुःख को प्राप्त होकर के जन्म लेता हुआ वैष्णवी माया से युक्त वायु का स्पर्श पाकर जन्म और मरण को याद नहीं करता और नहीं शुभाशुभ कर्मों को याद करता है। यही दुःख का आवरण है किन्तु वैराग्य का कारण भी यही है। योगी अपनी योग दृष्टि के द्वारा भगवान् की त्रिगुणात्मिका माया के कष्टों को अनुभव करके और अपने जन्म-जन्मान्तरों के दुःखों का अनुभव करके दुःख-द्वन्द्व से छूटना चाहता है किन्तु यह होता उसी स्थिति में है जबकि योगी अपनी योग-दृष्टि के द्वारा अपने पूर्व जन्मों में हुई-हुई जातियों का साक्षात्कार करता है। प्रत्यक्षानुभूति के बिना तो यह जाना ही नहीं जा सकता कि कोई पूर्व जन्म था भी या नहीं और आगे हमारा कोई जन्म होगा भी या नहीं। प्रत्यक्षानुभूति के बिना मनुष्य नास्तिक बन जाता है। और इसी जन्म को सुख-दुःख का कारण समझकर स्वार्थपरायणता में लग जाया करता है। वह दूसरे के दुःखों को नहीं देखता। उसका सिद्धान्त बन जाता है:

'यावज्जीवेत्सुखंजीवेत्
ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य
पुनरागमनं: कुतः ॥'

अर्थात् उनका यह सिद्धान्त बन जाता है कि मनुष्य जब तक जीवे सुखपूर्वक जीवे; कर्जा उठाकर घी पीवे। शरीर जलकर भस्म हो जायेगा फिर पुनर्जन्म क्या चीज था।

अतः योग विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा पूर्व जन्म के संस्कारों का साक्षात्कार किया जा सकता है। मैं अपने सभी पाठकों के हितार्थ एक उदाहरण इस प्रकार लिखा देना उचित समझता हूँ जिससे प्रत्येक साधक यह समझ जाय कि पुराने जमाने के जैगिषव्य आदि ऋषि इतिहास के पुराने उदाहरण तो हैं ही किन्तु इस कलिकाल के जमाने में भी इस प्रकार के योगिराज महापुरुष हैं जिनकी करुणा-कृपा को पाकर मनुष्य भूत-भविष्य का ज्ञाता बन जाता है और वह अपने पूर्व जाति के संस्कारों का साक्षात्कार कर लेता है। इस विषय में मुझे अपने सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी की अनेकों अनुकम्पाओं का स्मरण हो रहा है।

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी का एक उदाहरण :

एक समय मेरे गुरुभाई श्री गोपालनन्दजी महाराज अपने योग साधन आश्रम ऋषिकेश

के कुयें पर जल खींच रहे थे। अकस्मात् उनके हाथ से कुयें पर लगी हुए चरखी की खूँटी छूट गयी एवं उसमें लगी हुई कील से उनका हाथ काफी फट गया। उनके फटे हुए हाथ को देखकर वहाँ पर लोगों ने काफी आश्चर्य माना कि ऐसा क्यों हुआ। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी को महती कृपा से जितने भी वहाँ गुरुभाई-बहन थे वे सब अच्छे ध्यान योग के अभ्यासी थे। उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में प्रश्न किया कि हे प्रभो! भाई ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्दजी उत्कृष्ट-ध्यानी हैं और विवेक ख्याति की ओर तीव्रतम गति से बढ़ रहे हैं और फिर इतनी उत्कृष्ट स्थिति में भी यह घोर दण्ड क्यों मिला, कृपा कर बतलाइये। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि भाई हम क्या बतलायें? तुम सब ऊँचे-ऊँचे ध्यान योग के अभ्यासी हो; अपने अभ्यास में बैठकर के इसके संस्कारों का साक्षात्कार करो, पूर्व जाति का ज्ञान करो और देखो उस जन्म में इसके संस्कार क्या थे और कौन से कठिन कर्म विपाक के फलस्वरूप इसे यह दण्ड मिला है। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार वहाँ पर जितने अच्छे बड़े-बड़े ध्यानी लोग थे वे सब के सब अभ्यास में बैठ गये और अभ्यास में बैठकर ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी के पूर्व जन्म के जाति की छान-बीन करने लगे। शनैः शनैः उन लोगों ने जाना कि ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी इस जन्म से पहले जन्म में एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे और मथुरा में वह गऊघाट पर रहते थे। इनकी स्त्री रूप-गुणवती सुन्दर युवती थी। इनके मन में प्रतिक्षण यह भ्रान्ति रहती थी कि यह अपने रूप और यौवन के मद में कहीं कुमार्गगामिनी न हो जाय। वह अपने यजमानों के घर में कथायें कहने के लिए [illegible] करते थे। एक दिन जब कहीं सत्यनारायण की कथा कहने के लिए गये तो अपनी पत्नी को समझा गये कि तुम गऊ को कुट्टी काट कर चारा डाल देना जिससे गऊ भूखी न रहे किन्तु वह स्त्री गृहकार्यों की व्यस्तता के कारण गऊ को कुट्टी काट कर चारा न डाल सकी। परिणामस्वरूप जिस समय वह लौटकर घर आये तो अपनी स्त्री से पूछा कि क्या तुमने अब तक कुट्टी काट करके गऊ को चारा नहीं डाला? तो उसने उत्तर दिया—स्वामिन्! मैं घर के कार्यों में व्यस्त थी अब आपकी आज्ञानुसार अभी कुट्टी काट कर गऊ को चारा डाले देती हूँ। किन्तु विप्रदेव के मन में बड़ी शंकायें थीं। वह अपनी रूप शीलवती स्त्री को व्यभिचारिणी समझते थे। यथार्थ में वह वैसी नहीं थी किन्तु इन्होंने क्रोधवश होकर कहा कि तुमने गऊ को कुट्टी काटकर चारा नहीं खिलाया तो क्यों न मैं तुम्हारी ही ऐसी दशा कर दूँ कि तुम कभी—भी कुट्टी न काट सको। यह कहकर उन्होंने

अपनी स्त्री के हाथ को गँड़ासे से काट दिया। परिणामस्वरूप उसका हाथ कटकर कुये में गिर गया जिसके फलस्वरूप वह तड़फ करके मर गई। उसी पाप कृति के फलस्वरूप आज ब्रह्मचारीजी का हाथ कटकर कुये में गिरना था और इनकी मृत्यु होनी थी किन्तु ये विवेक-ख्याति की ओर हैं, इसलिए इनके हाथ में केवल चार आगई है, कुछ दिन दुःख रहेगा और फिर ठीक हो जायेगा और वैसे ही हुआ भी। हमारे गुरुभाइयों ने मथुरा में जाकर वहाँ ब्रह्मचारी गोपालानन्द के पूर्व जन्म के स्थान को ढूँढा। गऊघाट के वासी लोगों ने बतलाया कि हाँ! उनके मुहल्ले में कोई रामनारायण पाण्डेय नाम के पण्डित रहते थे और उन्होंने अपनी स्त्री का हाथ काट दिया था जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी। किन्तु बात बहुत पुरानी है, उनका वह मकान बिक चुका है, कुआँ बर्बाद हो चुका है। उनकी स्मृति का अब कोई चिन्ह अवशेष नहीं है। यह था योग के द्वारा संस्कार साक्षात्कार करके पूर्व जाति का ज्ञान प्राप्त करना। जिस प्रकार मनुष्य संस्कार साक्षात्कार करके पूर्व जाति का ज्ञान कर सकता है, उसी प्रकार मनुष्य समाधि के अभ्यास से जिस समय कि उसको विवेक ज्ञान प्राप्त होता है, जिस समय वह अपने संयमी चित्त को परचित्त ज्ञानादि में संयमित करता है तो उसको तत्काल ही परचित्त ज्ञान हो जाया करता है। भगवान् पतंजलि देव ने इसी विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम्।

अर्थात् पर पुरुष की वृत्ति में जिस समय योगी संयम करता है तो योगी को उसके चित्त का ज्ञान हो जाया करता है किन्तु उसका चित्त किस स्थिति में है, यह ज्ञान होता है। चित्त कहाँ अनुरागी है, इसका ज्ञान नहीं होता क्योंकि चित्त का 'अनुराग' उसके संयम का विषय नहीं है। इसी बात को स्पष्ट करके भगवान् पतंजलिदेव कहते हैं।

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात्।

क्योंकि योगी के संयमी चित्त ने उसके अनुराग को अपने संयम का विषय नहीं बनाया। प्रत्ययमात्र को अपने संयम का विषय बनाया है। इसलिए योगी को चित्तिमात्र से परचित्त का ज्ञान होता है। यदि योगी उसके अनुरक्त चित्त को अपने संयम का आधार बनाये तो उसके चित्त के अनुरागी धर्मों का साक्षात्कार भी कर सकता है और यह जान सकता है कि अमुक व्यक्ति का चित्त कहाँ अनुरागवाला है और उसके चित्त का विषय काम है, क्रोध है, लोभ है या मोह है। इस प्रकार योगी परचित्त को अपने संयम का विषय बनाकर परचित्त ज्ञानादि भली प्रकार प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य अपने मन को धारणा-ध्यान-समाधि के बल से संयमित बनाये।

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

[संकलित]

उत्सवे व्यसने युद्धे दुर्भिक्षे राष्ट्र विप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥

राज विप्लव में, राजद्वार पर और श्मशाने में जो आ उपस्थित हो उसी को बान्धव कहना चाहिए।

क्रीड़ा करोति मनुजं यथा जातमनित्यता।
धात्रीव जननी पश्चात्तथा शोकस्य कः क्रमः ॥

उत्पन्न होते ही दाई जैसी अनित्यता मनुष्य को गोद में ले लेती है माता बाद में उसे सम्हालती है तब उसके विषय में शोक करने की क्या—आवश्यकता ? जब एक दिन मरना ही था तब आज मर गया तब शोक क्यों किया जाय ?

क्व गताः पृथिवीपालाः ससैन्य बलवाहना।
वियोग साक्षिणी येषां भूमिरद्यापि तिष्ठति ॥

बड़ी-बड़ी सेना, वाहन और पराक्रम सम्पन्न वे राजे कहाँ गये कि जिनके वियोग की साक्षिणी पृथिवी आज भी विद्यमान है।

कायः संनिहितापायः संपदा पदमापदाम्।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम् ॥

शरीर क्षणभंगुर है, सम्पत्ति विपत्ति का घर है मिलाप वियोग पूर्ण है और जगत् में उत्पन्न सभी वस्तुयें विनाशशील हैं।

आसन्नतरतामेति, मृत्युर्जन्तोर्दिने दिने।
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव पदे पदे ॥

प्रत्येक प्राणी की मृत्यु दिनोदिन समीप आती रहती है। जैसे कि मृत्यु दण्ड प्राप्त मनुष्य जब वध्य स्थान की ओर चलता है तो एक एक पैर आगे बढ़ने पर मृत्यु उसके समीप आती रहती है।

सती अनुसुइया
का
श्री सीताजी को धर्मोपदेश

[सुश्री उमा शर्मा, संगीत रत्न]

प्रस्तुत अङ्क से पूर्व "सिद्धयोग" के पाँचवें अङ्क में सती अनुसुइया के सतीत्व के प्रभाव की पवित्र कथा लिखने का मैंने प्रयास किया था। एक सती की कितनी बड़ी शक्ति होती है और वह क्या क्या कर सकती है, यह सब भली प्रकार से उस कथा में मैंने समझाया था। पाठकों ने मेरे उस लेख को भली प्रकार से पढ़कर समझा होगा।

धर्म शीला, पतिव्रता श्री अनुसुइयाजी की इस प्रकार की बहुत-सी कथायें हैं जिनमें उनके आत्मशक्ति के चमत्कार कूटकूटकर भरे हुए हैं। समयानुसार मैं उनकी इन कथाओं को लिखकर जो परम आदर्श एवं उत्साहवर्धक होंगी पाठकों को प्रेषित करूंगी। किन्तु आज मैंने साधारणतः "श्री रामचरित मानस" को उठाकर पढ़ना आरम्भ किया तो उसमें भगवान श्रीराम का अत्रि ऋषिजी के आश्रम में पदार्पण का पवित्र इतिहास पढ़ा और उसी प्रकरण के अन्तर्गत श्री अनुसुइयाजी का श्री सीताजी को पातिव्रत धर्म समझाने वाला प्रकरण बहुत ही रुचिकर लगा। अतः मेरे मन में यह धारणा बन गई कि मैं अपनी बहनों के हितार्थ उस महासती के अन्य चरित्र लिखने से पूर्व उनके 'रामचरित मानस' में वर्णित उपदेश को लिख डालूं जिसको पढ़कर मेरी बहनें उस पवित्र धर्मोपदेश को अपने जीवन में सार्थक रूप से घटाने का प्रयत्न करें। वह प्रकरण इस प्रकार है :

परम साध्वी महान् पतिव्रता श्री अनुसुइया जी का नाम संसार में इस प्रकार चमत्कृत है जिस प्रकार से नक्षत्रों में चन्द्रमा सुशोभित होता है और चमकता है।

इधर भगवान श्री रामचन्द्रजी तो अत्रि ऋषि से मिले। उधर श्री सीताजी भी श्री अनुसुइयाजी के पास पहुँची यथा—

चौपाई

अनुसुइया के पद गहि सीता,
मिली बहोरि सुसील बिनीता।
रिषि पतिनी मन सुख अधिकाई,
आसिष देइ निकट बैठाई॥

फिर परम शीलवती और विनम्र श्री सीता जी। [अत्रिजी की पत्नी] श्री अनुसुइयाजी के चरण पकड़ उनसे मिलीं। ऋषि पत्नी के

मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशिष देकर सीताजी को पास बैठा लिया।

चौपाई

दिव्य बसन भूषण पहिराये,
जे नित नूतन अमल सुहाये।
कह ऋषि बधू सरस मृदु बानी,
नारि धर्म कछु ब्याज बखानी॥

पास बैठाकर श्री सीताजी को ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये, जो नित्य नये निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषि-पत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से स्त्रियों के कुछ धर्म बखान कर कहने लगी।

चौपाई

मातु पिता भ्राता. हितकारी,
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमित दानि भर्ता बयदेही,
अधम सो नारि जो सेव न तेही।

अर्थात् हे राजकुमारी! सुनिये—माता, पिता, भाई सभी हित करने वाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमा तक ही (सुख) देने वाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो [मोक्ष रूप] असीम (सुख) देने वाला है। वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती। क्योंकि—

चौपाई

धीरज धर्म मित्र अरु नारी,
आपद काल परखि अहि चारी।
वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना,
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥

ऐसेहु पति कर किय अपमाना,
नारि पाव जमपुर दुःख नाना।
एकइ धर्म एक व्रत नेमा,
काय वचन मन पति पद प्रेमा।

अर्थात् धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री—इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति-भाँति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिये, बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

चौपाई

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं,
वेद पुराण संत सब कहहीं।
उत्तम के अस बस मन माहीं,
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखइ कैसें,
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई,
सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥

अर्थात् जगत् में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद पुराण और सब सन्त ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत् में मेरे पति को छोड़कर दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है। और मध्यम श्रेणी की पतिव्रता

पराये पुरुष को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। अर्थात् समान अवस्था वाले को भाई के रूप में, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है।) जो धर्म को विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है वह निकृष्ट (निम्न श्रेणी की) स्त्री है; ऐसा वेद कहते हैं।

चौपाई

बिनु अवसर भय तें रह जोई,
जानेहु अधम नारि जग सोई।
पति बंचक परपति रति करई,
रौरव नर्क कल्प सत परई।
छन सुख लागि जनम सत कोटी,
दुःख न समुझ तेहि सम को खोटी।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई॥
पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई।
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई,
बिधवा होई पाइ तरुनाई॥

अर्थात् जो स्त्री मौका न मिलने से भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना। पती को धोखा देने वाली जो स्त्री, पराये पति से रति करती है, वह सौ सौ कल्प तक रौरव नर्क में पड़ी रहती है।

तथा क्षणभर के सुख के लिये जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत धर्म का धारण करती है वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है।

किन्तु जो स्त्री पति के प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी में) विधवा हो जाती है।

सोरठा

सहज अपावनि नारि
पतिसेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि,
अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय।

अर्थात् स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। पातिव्रत धर्म के कारण ही आज भी "तुलसीजी" भगवान् को प्रिय हैं। और चारों वेद उनका यश गाते हैं।

सोरठा

सुनु सीता तव नाम,
सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम,
कहिउँ कथा संसार हित॥

अर्थात् हे सीता ! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म का पालन करेंगी। तुम्हें तो श्री रामजी प्राणों के समान प्रिय हैं। यह पातिव्रत धर्म की कथा तो मैंने संसार के हित के लिये कही है।

चौपाई

सुनि जानकी परम सुख पावा,
सादर तासु चरन सिरु नावा॥

इस धर्मोपदेश को सुनकर श्री सीताजी ने परम सुख प्राप्त किया क्योंकि वे स्वयं ही एक महान पतिव्रता थी। श्री सीताजी स्वयं पतिपरायणा तो थीं ही किन्तु फिर भी श्री अनुसूइया के उपदेश को सुनकर प्रसन्नतावश उनके हृदय की कली खिल उठी और वे और भी अधिक दृढ़ वृत्ति हो गईं। श्री अनुसूइयाजी का उपदेश केवल सीताजी के लिये ही नहीं था किन्तु सीताजी के बहाने संसार की सभी स्त्रियों को यह उपदेश दिया है। श्री सीताजी सब प्रकार से परिपूर्णा, धर्मस्वरूपा एवं महायोगिनी थीं। उनके प्रत्येक रोम-रोम धर्मवास करता था। सिद्धि शक्तियों की आधार थीं। ऐसे रामायण में बहुत ही प्रमाण मिलते हैं। रामचरित मानस के पाठ करने वाले पाठकों को ये भली प्रकार से याद होगा कि यों सीताजी ने कुमारावस्था में ही अपने पतिदेव श्री रामचन्द्रजी की बारात के आतिथ्य के लिये सिद्धि शक्तियों का आह्वान करके बारात का सफल स्वागत कराया था। इस प्रकरण से भी यह सिद्ध होता है कि श्री सीताजी जन्म से ही सिद्धि शक्ति सम्पन्ना थी, एवं आदि शक्ति महा योगिनी थी ऐसी स्थिति में श्री सीताजी को धर्मोपदेश समझाना समुचित नहीं लगता फिर भी श्री अनुसूइयाजी ने उपदेश दिया उसका कारण केवलमात्र एक ही प्रतीत होता है और वह यह कि उन्हें सीताजी के बहाने मनुष्य लोक की सभी स्त्रियों को ये उपदेश समझाना था ताकि वे सब पतिचरणानुरागिनी होकर परम श्रेय लाभ कर सकें। अतः सभी बहनों को यह प्रकरण ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये। और महान पतिव्रता अनुसूइया के उपदेश की एक एक चौपाई को पढ़कर उनका अनुसरण करना चाहिये ताकि वे भी परम कल्याण की भागी बन सकें।

योगी ही उस अविनाशी को देखते हैं

[महाभारत से]

[श्री ब्रह्मचारी वीरेन्द्र द्वारा प्रेषित]

सनत्सुजात उवाच :

यत् तच्छुक्रं महज्ज्यो-
तिर्दीप्यमानं महद् यशः।
तद् वै देवा उपासते,
तस्मात् सूर्यो विराजते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति,
भगवन्तं सनातनम्॥

श्री सनत्सुजातजी कहते हैं—हे राजन्! जो शुद्ध ब्रह्म परमात्मा है वह महान् ज्योतिर्मय, दैदीप्यमान एवं विशाल यशरूप है। सब देवता उसी की उपासना करते हैं। उसी के प्रकाश से सूर्य प्रकाशित होते हैं, उस सनातन भगवान् का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति,
ब्रह्म शुक्रेण वर्धते।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं
तपति तापनम्॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति,
भगवन्तं सनातनम्॥

शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्म से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति होती है तथा उसी से वह वृद्धि को प्राप्त होता है। वह शुद्ध ज्योतिर्मय ब्रह्म ही सूर्यादिसम्पूर्ण ज्योतियों के अन्दर स्थित होकर सबको प्रकाशित कर रहा है एवं तपा रहा है; वह स्वयं सब प्रकार से अतप्त और स्वयं प्रकाश है, उसी सनातन भगवान का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

अपोऽथ अद्भ्यः सलिलस्य मध्ये,
उभौ देवौ शिश्रियातेऽन्तरिक्षे
अतन्द्रितः सवितुर्विवस्वा,
नुभौ बिभर्ति पृथ्वीं दिवं च
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।

जल की भांति एक रस परब्रह्म परमात्मा में स्थित पाँच सूक्ष्म महाभूतों से अत्यन्त स्थूल पंच भौतिक शरीर के हृदयाकाश में दो देव— ईश्वर और जीव उसको आश्रय बनाकर रहते हैं। सबको उत्पन्न करने वाला सर्वव्यापी परमात्मा सदैव जाग्रत रहता है। वही इन दोनों को तथा पृथ्वी और द्युलोक को भी धारण करता है। उस सनातन भगवान् का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

उभौ च देवौ पृथ्वीं दिवं च
दिशः शुक्रो भुवनं बिभर्ति।
तस्माद् दिशः सरितश्च स्रवन्ति,
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

उक्त दोनों देवताओं को, पृथ्वी और आकाश को, सम्पूर्ण दिशाओं को तथा समस्त लोक समुदाय को वह शुद्ध ब्रह्म ही धारण करता है। उसी परब्रह्म से दिशाएँ प्रकट हुई हैं, उसी से सरिताएँ प्रवाहित होती हैं तथा उसी से बड़े-बड़े समुद्र प्रकट हुए हैं। उस सनातन भगवान का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तोऽ-
ध्रुवस्याव्यय कर्मणः।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं
दिव्यमजरं दिवि।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम्॥

जो इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि का संघात-शरीर विनाशशील है, जिसके कर्म अपने आप नष्ट होने वाले नहीं हैं, ऐसे इस शरीर रूप रथ के चक्र की भांति इसे घुमाने वाले कर्मसंस्कार से युक्त मन से जुते हुए इन्द्रिय रूप घोड़े उस हृदयाकाश में स्थित ज्ञानस्वरूप दिव्य अविनाशी जीवात्मा को जिस सनातन परमेश्वर के निकट ले जाते हैं, उस सनातन भगवान का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

न सादृश्ये, तिष्ठति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम्
मनीषयाथो मनसा हृदा च,
य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

उस परमात्मा का स्वरूप किसी दूसरे की तुलना में नहीं आ सकता उसे कोई चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकता है। जो निश्चयात्मिका बुद्धि से, मन से और हृदय से उसे जान लेते हैं; वे अमर हो जाते हैं अर्थात् परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। उस सनातन भगवान का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

द्वादशपूगां सरितं पिबन्तो देवरक्षिताम्।
मध्वीक्षन्तश्च तेतस्या संचरन्तीह घोराम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

जो दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—इन बारह के समुदाय से युक्त है तथा जो परमात्मा से सुरक्षित है, उस संसार रूप भयंकर नदी के विषयरूप मधुर जल को देखने और पीनेवाले लोग उसी में गोता लगाते रहते हैं। इससे मुक्त करने वाले उस सनातन परमात्मा का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

तदर्धमासं पिबति संचित्य भ्रमरोमधु।
ईशानःसर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

जैसे शहद की मक्खी आधे मास तक शहद का संग्रह करके फिर आधे मास तक उसे पीती रहती हैं, उसी प्रकार यह भ्रमणशील संसारी जीव इस जन्म में किये हुए संचित कर्म को विभिन्न योनियों में भोगता है। परमात्मा ने समस्त प्राणियों के लिए उनके कर्मानुसार कर्म फलभोग रूप हवि की अर्थात् समस्त भोग पदार्थों की व्यवस्था कर रखी है। उस सनातन ब्रह्म का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपद्य ह्यपक्षकाः।
तेतत्र पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथा दिशम्
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

जिसके विषयरूपी पत्ते स्वर्ण के समान मनोरम दिखाई पड़ते हैं, उस संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष पर आरूढ़ होकर पंखहीन जीव कर्मरूपी पंखधारण कर अपनी वासना के अनुसार विभिन्न योनियों में पड़ते हैं; किन्तु योगी लोग उस सनातन परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।

पूर्णात् पूर्णान्युद्धरन्ति
पूर्णात् पूर्णानि चक्रिरे।
हरन्ति पूर्णात् पूर्णानि
पूर्णं मेवावशिष्यते।
योगिनस्त प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम्।

पूर्ण परमेश्वर से पूर्ण चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, पूर्णसत्ता स्फूर्ति पाकर ही वे पूर्ण प्राणी चेष्टा करते हैं। फिर पूर्ण से ही पूर्ण ब्रह्म में उनका विलय होता है तथा

अन्त में एकमात्र पूर्णब्रह्म ही शेष रह जाता है। उस सनातन परमात्मा का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

तस्माद् वै वायुरायातस्तस्मिंश्च
प्रयतः सदा
तस्मादग्निश्च सोमश्च
तस्मिंश्च प्राण आततः ॥

उस पूर्ण ब्रह्म से ही वायु का आविर्भाव हुआ है और उसी में वह चेष्टा करता है। उसीसे अग्नि और सोम की उत्पत्ति हुई है तथा उसी में यह प्राण विस्तृत हुआ है।

सर्वमेव ततो विद्यात् तत्,
तद् वक्तुं न शक्नुमः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम् ॥

उन सबका वर्णन अलग-अलग नहीं किया जा सकता अतएव तुम इतना ही समझो कि सब कुछ उस परमात्मा से प्रकट हुआ है। उस सनातन भगवान का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

अपानं गिरति प्राणः
प्राणं गिरति चन्द्रमाः।
आदित्यो गिरते चन्द्र-
मादित्यं गिरते परः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति
भगवन्तं सनातनम् ॥

अपान को प्राण अपने में विलीन कर लेता है, प्राण को चन्द्रमा, चन्द्रमा को सूर्य और सूर्य को परमात्मा अपने में विलीन कर लेता है उस सनातन परमेश्वर का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

एकं पादं नोत्क्षिपति,
सलिलाद्धंस उच्चरन्।
तं चेत् सततमूर्ध्वाय
न मृत्युर्नामृतं भवेत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति,
भगवन्तं सनातनम् ॥

इस संसार सलिल से ऊपर उठा हुआ हंस रूप परमात्मा अपने एक पाद (जगत्) को ऊपर नहीं उठा रहा है, यदि उसे भी ऊपर उठा ले तो सबका बन्ध और मोक्ष सदा के लिए मिट जाय उस सनातन भगवान् का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
लिङ्गस्य योगेन स याति नित्यम्।
तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं
पश्यन्ति मूढ़ा न विराजमानम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।

हृदय देश में स्थित वह अंगुष्ठ मात्र जीवात्मा सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध से सदा जन्म-मरण को प्राप्त होता है। उस सबके शासक, स्तुति के योग्य, सर्वसमर्थ, सबके आदिकारण एवं सर्वत्र विराजमान परमात्मा को मूढ़ जीव नहीं देख पाते; किन्तु योगीजन उस सनातन परमेश्वर का साक्षात्कार करते हैं।

[शेष आगामी अंक में

वेदामृत

★ ईश्वर-प्रणिधान ★

[श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज]

पूर्व प्रकाशित से आगे—

[२]

यह सचाई है—
नजदीक से नजदीक है
और दूर से है दूर तर,
चश्मे दिल को खोल कर
देखो वह आता है नजर।

परमात्मा सबकी अन्तरात्मा के समीप से समीप और दूर से दूर है कैसी बात है, जो समझ में नहीं आती। यहाँ तो बुद्धिमानों की बुद्धि भी मात खाती और आगे जाने से घबराती है। ऐसी वस्तु के लिये जिसमें हठ पाया जाय, प्रयत्न निष्फल है, क्योंकि यह विचार है। क्या कभी किसी का इससे मिलाप भी होता है ? इस प्रश्न को सुलझाना कठिन है। ऐसा नहीं, बाहरी कानों से सुना और बाहरी आँखों से वह देखा नहीं जाता है। परन्तु मन के चक्षु से देखा जाता है। इसलिये बाहरी आँखों से दूर और अन्दर की आँखों के समीप हो जाता है और देखने में नहीं आता है। यह कहा गया है कि परमेश्वर में जगह या समय का भेद नहीं है कारण यह है कि व्यापक वस्तु समय या स्थान की कैद में नहीं आ सकती है। और व्याप्य वस्तु व्यापक से कभी भी जुदा नहीं हो सकती, ऐसी अवस्था में फिर वह नजर क्यों नहीं आता ? इसका कारण विचार-भेद है। समय और स्थान का प्रभाव सांसारिक वस्तुओं पर तो हो सकता है, परन्तु उस अविनाशी परम पिता परमात्मा पर इन चीजों का अधिकार नहीं है। वह हर समय और हर स्थान पर मौजूद है। परन्तु भेद तो विचारों का है। जब तक विचार पवित्र और उच्च न हों तब तक प्रभु से मिलाप असम्भव है। अतः यह मनुष्य की योग्यता पर निर्भर है कि वह विचारों को उच्च बनाए।

लोगों को परमात्मा के जानने में इस बात की बड़ी रुकावट है कि वह पहिले अपने आपको नहीं पहचानते हैं। जिस मनुष्य को अपने आपका होश नहीं वह परमात्मा को कब पा सकता है। जो स्वयं मार्ग भूला हुआ है वह दूसरे को कब मार्ग दिखा सकता है। कुछ ऐसी भूल हुई पड़ी है कि जो डाकू की तरह-तरह मार्ग को रोककर खड़ी हुई है। आत्मा

पास है परन्तु हम इसको दूर समझ रहे हैं। मनुष्य इस शरीर के चोले में प्रकाश से अपरिचित हो शरीर के किसी भाग को अपना मान ले। जब ड्राइवर अपना ही होश न हो, तो गाड़ी को भली प्रकार कैसे चला सकता है। यह सत्य है कि जिसको अपना ही ज्ञान न हो वह परमात्मा को कैसे पहचान सकता है। आत्मा के ज्ञान के बाद परमेश्वर के जानने के लिये और कोई यत्न नहीं करना पड़ता यह सिद्धान्त ठीक है। जो ज्ञान इसके दोष को दूर कर देता है, वह तत्काल ही परमात्मा के प्रकाश से इसको भरपूर कर देता है। जो अज्ञान अपने स्वरूप में बैठा हुआ है, ठीक प्रकार से पहिले उसको दूर करने का यत्न करना चाहिये। यह प्रभु-भक्तों का कहना ठीक है—

जो नाश से पहले नष्ट हुआ,
वह 'शेष' में मिलकर शेष हुआ।

यह कैसा वार्तालाप है, आनन्द का सच्चा मित्र है। कहने और सुनने में प्रेम का प्रकाश हो जाता है। अपने व्यक्तित्व का, जिसका कभी पतन नहीं होता, विकास होता है। कैसा आश्चर्य है, जिसके जान लेने से संसार की हर एक चाल मात है - कैसा ऊँचा स्थान है, जिसका न कोई मकान और न कोई निशान है। यह एक ऐसी आनन्दमय अवस्था है जहाँ न कोई दुःख और न कोई गिरावट है। संसार वाले ऐसी बातें सुनकर ही सांसारिक व्यवहार करते हैं, परन्तु इस पर आचरण करते डरते हैं। आजकल ऐसी बातों का बड़ा ही मान है, उसकी दुकान खूब चल रही है जो चालाक है। परन्तु वह चालाकी व्यर्थ है जिसमें अन्त को दुःख है।

इसलिए हे मित्र ! यह अवसर बड़ा अच्छा है जरा सावधान होकर खड़ा हो जा। बल और सचाई से, पूरे प्रयत्न से प्रतिबिम्ब के पीछे मत घूम, परन्तु असली वस्तु को ढूँढ फिर झूम कर मचा दे धूम। इसलिए यह कहना सच है कि, फूल बन, काँटा न बन। मित्र बन शत्रु न बन। जिसने मृत्यु से पहले अपने को नष्ट कर दिया है इसको फिर कहीं भी कष्ट, दुःख अथवा शोक नहीं होता, वह नाशवान् को नष्ट करके 'शेष' में जाकर 'शेष' हो गया है।

कर्म और फल के चक्र को तभी रोका जा सकता है जब मनुष्य कर्म तो करे परन्तु अपने आपको मध्य से हटा दे। अपने सत्कर्म और दूसरों के कुकर्म भूल जावे। यह कार्य कहने में तो सुगम पर आचरण करने में अति कठिन है। परन्तु, इसके लिए भी एक उपाय है, यदि मनुष्य को लगन है तो आज नहीं तो कल प्राप्ति होगी ही। कारण यह है कि वह केवल भ्रम से निर्लज्ज हो रहा है। भ्रम के दूर होते ही सदा के लिए उससे निर्लज्जता दूर हो जाती है, इसलिए भ्रम का होना न होने के बराबर है—

प्रभु सब में सभी कुछ है प्रभु में।

मनुष्य में दोष है जो मिलाप नहीं होने देता। परमात्मा के प्रेम से, सत्संग से, उदारता से जब दोष दूर कर दिया जाता है, तब वियोग स्वयमेव दूर हो जाता है और हृदय की पवित्रता सम्मुख आती है।

हृदय आनन्द में डूब कर साक्षात्कार की मंजिल की ओर जाने को प्रेरित करता है—फिर तबियत पीछे की ओर नहीं हटती। यह अवस्था सबको प्राप्त नहीं होती जब जन्म-जन्मान्तर का क्रम समाप्त हो जाए, तब अन्तिम जीवन में मनुष्य को यह ध्यान आता है। फिर—

हो गया आनन्द, दुनिया
को रिझा कर क्या करूँ।
दिल प्रकाशित हो तो
दीपक राग गाकर क्या करूँ।
जल गया अज्ञान का
वह जाल अग्नि ज्ञान से।
खुद बुझी जाती है अब
उसको बुझा कर क्या करूँ॥

यह सब निश्चित ज्ञान से कहा गया है। साक्षात्कार में और ही गुल खिलता है—आगे देखिये।

साक्षात्कार काण्ड

ध्यान उसका दिल में
समाता नहीं।
सागर है, सागर में आता नहीं॥

परमात्मा के गुण निराले हैं, गुण-गान करना सम्भव नहीं। वाक-शक्ति इसकी व्याख्या करने में असफल रही है। परन्तु ज्ञान और बुद्धि इतना बताते है कि कोई उसका इकरार और कोई इन्कार करने में हर एक उसमें विश्वास रखता है। हर प्राणी किसी न किसी हालत में उसके आगे प्रार्थी है।

कहीं भी जाओ, पर वह मिलता नहीं, परन्तु विद्वानों की सभा में उसकी कहीं-कहीं चर्चा सुनते है। हर एक उसको चाहता है गरीब हो या अमीर, महाराज हो या फकीर हर कोई उसका अभिलाषी है। कोई अद्वितीय मनुष्य केवल तुझसे संयोग करने की इच्छा से घर बाहर छोड़ जाता है, और कोई जङ्गल में जाकर समाधि लगाता है, परन्तु फिर भी तेरा जलवा (प्रकाश) नहीं दीखता।

ओ कृपालु! हर मकान में होता हुआ भी तू लामकां (जिसका अपना कोई घर नहीं) है, हर एक वस्तु में अदृष्ट रूप में रहता है। कुल संसार तुझसे बेखबर परन्तु तू सबसे खबरदार है। इधर-उधर, ऊपर-नीचे वर्तमान है, पर फिर भी तू गैर-हाजिर है यह कैसा आश्चर्य है जिसे समझना

कठिन है। कोई रोता है, कोई टकटकी लगाये चुपचाप अपनी सुध-बुध खोता है। केवल इसी भेद को समझने के लिए, हे मित्र ! मैं पूछता हूँ—कुछ तो बता दे—तू समीप है या दूर, नार है या नूर, तू शोक है या प्रसन्नता। तू किसी को अपने बिछोह में सता रहा है और किसी को प्रेम से थपकियाँ देकर सुला रहा है ! किसी पर दुःख ढाना और किसी को कृपा-पात्र बनाना स्पष्ट प्रमाणित कर रहा है कि यह न्याय नहीं, अन्याय है, शासन नहीं क्षमादान है। बस इस लाचार का रोना-धोना तेरे आगे इतना ही काफी है। व्यर्थ में किसी की परेशानी बढ़ाना ठीक नहीं जरा परदा उठा दे और अपना जलवा (प्रकाश) दिखा दे। तेरा कुछ बिगड़ेगा नहीं, बेचारे प्रसन्नचित्त और मालामाल हो जावेंगे। इस अवस्था में सनसनी-सी छाई और धीमी-सी आवाज आई—

अपनी जिद को तू नहीं अब छोड़ता।
उल्फते दुनिया से मुँह नहीं मोड़ता ॥
अपनी दानाई से मैं हूँ बाकमाल।
अपनी बेसमझी से तू है बाजवाल ॥

यह विद्वानों का वचन फिलासफी की बात है कि विवेक-बुद्धि उस ओर झुक जाती है और अविवेक-बुद्धि वाली प्रकृति इस रास्ते में रुक जाती है। इसलिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रकृति को ठीक बनाने की कोशिश करे। यह एक ऐसा नेक कार्य है कि संसार का हर एक काम जो नेकी के आधार पर हो, वह सुन्दर व आनन्ददायक हो जाता है और प्रभु-मिलाप सुगम हो जाता है—

नहीं कहता हूँ दुनिया से जुदा हो।
पर हर काम में यादे खुदा हो ॥

संसार से वैराग्य उस प्रभु की पहचान का ठीक रास्ता नहीं है। जो यह कहते हैं कि उसके मिलाप के लिए दुनिया छोड़ दो, वे असली भेद नहीं जानते। हाँ, यह ठीक है यदि किसी को एकान्त से प्रेम है अथवा किसी को कम बोलना पसन्द है तो बहुत न बोले—यह अच्छा गुण है. मनुष्य की सोचने और समझने की ताकत को बढ़ाता है– यदि शौक हो।

बाह्य-संसार का यह शरीर एक छोटा-सा नक्शा है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो संसार के बनाने में काम आई हो और वह इस शरीर में मौजूद न हो। इसलिए यह कहना ठीक है कि जब तक यह जिस्म साथ दे रहा है दुनिया का छोड़ना कठिन है। देखा जाता है कि जो जमाने में आजकल वैरागी माने जाते हैं, वे दुनियादारों से अच्छा खाते और आराम पाते हैं। और उन लोगों को जो कई कठिनाइयों में फँसे हुये भी अपना गुजारा करते हैं—उन्हीं को डराकर अपनी पूजा कराते हैं। कैसी विचित्र अवस्था है—यह बेतरीके का एक बहाना है– केवल

भारतवर्ष ही इस बात का दीवाना है। इसलिए देख लो इसका बिगड़ा हुआ जमाना है।

बेकायदा दुनिया नहीं छोड़ी जा सकती। पैसा तो पास नहीं पर उसकी इच्छा बनी रहती है। वे धन को क्या छोड़ेंगे जिनसे धन की व्यर्थ इच्छा ही नहीं छूटती। इसी तरह हर एक ख्याल को समझ लेना चाहिए। ऐसी बेढंगी चाल से कौन नियत स्थान तक पहुँच सका है। इस प्रकार की गलत कोशिश करने से कोई नेक नतीजा निकल सकता है? कदापि नहीं। अधूरे उपदेशों से, प्रभाव-रहित शिक्षाओं से, उपाय-हीन चेष्टा से, स्वार्थता के बहकाने से, व्यर्थ झगड़े उठ जाने से स्पष्ट हो रहा है कि भारतवर्ष आज से नहीं परन्तु बहुत समय से बिगड़ता ही चला आता है। यह बात सत्य है कोई किस्सा-कहानी नहीं जमाना गवाही दे रहा है बहाना नहीं। कोई भी काम छोटा हो या बड़ा गुप्त हो या स्पष्ट तब तक सुचारु रूप में न आएगा जब तक नेक हाथों में न जायेगा। दुनिया वाले बेमाल और उसे छोड़ने वाले मालामाल। हाँ, उनमें नेक मनुष्य भी मौजूद हैं, सबको एक-सा बताना तो पाप-मार्ग में जाना है। कुछ समझदार तो संसार का रंग देखकर उदासीन चुपचाप बैठे हैं और जो कुछ काम उनकी सहायता से हो रहा है, वे बहुत कम संख्या में हैं। यूँ तो एक मनुष्य भी काफी होता है जो शुद्ध आचरण वाला, झूठ और धोका-देही से दूर, लोक-सेवा में तत्पर, विद्या-युक्त और कर्तव्य में निपुण हो। ऐसा मनुष्य, यदि प्रभु की कृपा हो, तो आये जिसके सत्य उपदेशों से अज्ञान-रूपी अन्धकार दूर हो जावे। इसीलिये विद्वान् ने ठीक कहा है कि दुनिया से अलहदा होने को मैं तुम्हें नहीं कहता हूँ, उस काम को कर, फिर किसी से न डर। अविनाशी, सर्वगुण-सम्पन्न, प्रकाशवान्, सबसे नजदीक और सबसे दूर, निराकार, सर्व-शक्तिमान्, सृष्टि के शासक, जिसके बराबर या बढ़कर और कोई नहीं, यह सब उसके साधारण गुण हैं। वह सर्व-व्यापक और निर्लेप स्वयं कभी दृष्टिगोचर नहीं होता पर सबको देखने में समर्थ है। उसे भूलकर अपना जीवन मत बिता। स्वयं उस पर आचरण कर और दूसरों से करा। जिसे उसकी याद है, वह सदा प्रसन्न चित्त है। जो उससे दूर है, वह सदा लाचार व मजबूर है। जिस चीज के लगाव में पड़कर मनुष्य उसे भूल जाता है, विद्वानों ने उसे दुनिया कहा है और वही पक्का दुनियादार है। और दुनिया में रहता हुआ भी, जैसे कमल का पत्ता जल में रहता हुआ उसके प्रभाव से खाली रहता है, उसको भूलता नहीं है वही सच्चा वैरागी है। यह सच है संसार बेगाना है। ध्यानपूर्वक देख लो, झूठ नहीं, सत्य है, समय निकल जाता और फिर मनुष्य पछताता है पर हाथ कुछ नहीं आता। इसलिये किसी ने

महर्षि दयानंद और योग

[श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य']

आर्य समाज के प्रवर्तक और वेदार्थों के अद्वितीय व्याख्याता महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं एक बहुत बड़े योगी थे तथा योग के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी, यह तथ्य उनकी जीवनचर्या के अवलोकन और उनके विरचित ग्रन्थों के अध्ययन से भली प्रकार विदित हो जाता है। जैसे आप्त ग्रन्थों के नाम पर फैलाये गये आडम्बरों और पाखण्डों का उन्होंने खुलकर विरोध किया है वैसे ही योग और योग-दर्शन के नाम पर चलाये जा रहे पाखण्ड और आडम्बर के भी वे प्रबल विरोधी थे। चमत्कार दिखाना या चमत्कार प्रदर्शन की आड़ में- भोली और भावुक जनता के मन को भ्रमित कर देने मात्र को—वे योग अथवा उसका कोई अङ्ग मानने को तय्यार नहीं थे।

अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के उपासना विषयक प्रकरण में ऋषि ने अथर्व-वेद और यजुर्वेद के कतिपय मन्त्र उद्धृत करते हुए योगोपासना पर सबसे अधिक बल दिया है तथा यम-नियम की परिपालना की संपुष्टि करते हुए उनकी विस्तृत व्याख्या की है।

ऋग्वेद अध्याय ४ और यजुर्वेद अध्याय ११ के मन्त्रों के उद्धरण के साथ उन्होंने (ऋषि ने) अपने उपासना विषय का आरम्भ किया है जिसमें योगोपासना पर ही बल दिया गया है। यथा—

युञ्जते मन युत युञ्जते धियो,
विप्रा विप्रस्य बृहुता विपश्चितः
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक,
इन्मही देवस्य सवितुः परिष्ठुतिः ॥

ऋ० अ० ४/व/२४/१

'युञ्जते' शब्द की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है। उपासना समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें।

आगे श्री महर्षि पुनः लिखते हैं— और जो लोग ईश्वर के उपासक (विप्राः) अर्थात् बड़े-बड़े बुद्धिमान (होत्राः) उपासना योग के ग्रहण करने वाले हैं वे (विप्रस्य) सबको जानने वाला, (बृहतः) सबसे बड़ा (विपश्चितः) और सब विद्याओं से युक्त जो परमेश्वर है उसके बीच में (मनः युञ्जते) अपने मन को ठीक-ठीक युक्त करते हैं। तथा (उतधियः) अपनी बुद्धि वृत्ति अर्थात् ज्ञान को भी (युञ्जते) सदा परमेश्वर में ही स्थिर करते हैं। जो परमेश्वर सब जगत को (विदधे) धारण और विधान करता है (वयुनाविदेक इत्) जो सब जीवों के ज्ञानों तथा प्रजा का भी साक्षी है वही एक परमात्मा सर्वत्र व्यापक है कि जिससे परे को कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। (देवस्य) उस देव अर्थात् जगत के प्रकाश और सवितुः) सबकी रचना करने

वाले परमेश्वर की (परिष्टुति) हम सब लोग सब प्रकार से स्तुति करें। कैसी है। वह स्तुति-मही - सबसे बड़ी अर्थात् जिसके समान किसी दूसरे की हो ही नहीं सकती।

युञ्जानः प्रथमं मनः,
तत्त्वाय सविता धियम्।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य,
पृथिव्या अध्याभरत ॥

यजु० अ० ११ मं० २

(युञ्जानः। योग को करने वाले मनुष्य (तत्वाय) तत्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिए प्रथम मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं तब (सविता) परमेश्वर उनकी (धियम्) बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके (अध्याभरत् यथावत् धारणा करते हैं। (पृथिव्या। पृथिवी के बीच में यही योगी का लक्षण है।

अर्थात् योगी वही है जिसका मन परमात्मा में लीन हो गया है।

आगे यजुर्वेद के दूसरे मन्त्र में भी योगोपासना की महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है :

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्गेय शक्त्या ॥

अर्थात् सब मनुष्य इस प्रकार की इच्छा करें कि (वयम्) हम लोग (स्वर्गवास) मोक्ष सुख के लिए (शक्त्या) यथायोग्य सामर्थ्य के बल से (देवस्य) परमेश्वर की सृष्टि में उपासना योग करके अपने आत्मा को शुद्ध करें कि जिससे (युक्तेन मनसा) अपने शुद्ध मन से परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द को प्राप्त हों।

यजुर्वेद के १२वें अध्यायका एक और मंत्रांश लीजिए।

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ व पतेह बीजम्।

अर्थात् हे उपासक लोगों तुम योगाभ्यास तथा परमात्मा के योग से नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द को विस्तार करो। इस प्रकार करने से (कृते योनौ) योनि अर्थात् अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके और परमानन्द स्वरूप परमेश्वर में स्थिर करके उसमें उपासना विधान से विज्ञान रूप (बीजं) बीज को अच्छी प्रकार से बोओ।

महर्षि ने आगे एक और मन्त्र का उल्लेख करते हुए उसका अर्थ इस प्रकार किया है :

हे परमेश्वरर्य्या युक्त मंगलमय परमेश्वर आपकी कृपा से मुझको उपासना योग प्राप्त हो तथा उससे मुझको सुख भी मिले। इसी प्रकार आपकी कृपा से दश इन्द्रिय, दश प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार, विद्या स्वभाव शरीर और बल ये अट्ठाईस सब कल्याणों में प्रवृत्त होके उपासना योग को सदा सेवन करें तथा हमभी उस योग के द्वारा रक्षा को और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहते हैं इत्यादि।

स्वामीजी ने योगाङ्गों और महर्षि पतञ्जलि के यौगिक सूत्रों पर अपनी महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है। कतिपय उद्धरण पढ़िए :—

'चित्त की वृत्तियों को सब वृत्तियों से हटाकर शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं। और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराइयों में फंसकर उससे दूर हो जाना।'

'जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध द्वारा रोक देते हैं वह जिस ओर नीचा होता है वहीं चल के कहीं ठहर जाता है इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है। एक तो चित्त की वृत्ति के रोकने का यह प्रयोजन है और दूसरा यह कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है। और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की तो ज्ञान रूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फँसती जाती है।

चित्तवृत्ति की ऐसी व्याख्या करके उन्होंने योग की महत्ता का वर्णन करते हुए प्राणायाम, ब्रह्मचर्य शौच आदि सभी को अपनाने पर बल दिया है।'

ईश्वर प्रणिधान योगी के लिए अति आवश्यक है। स्वामीजी ने इसीलिए लिखा है—'ईश्वर में विशेष भक्ति होने से मन का समाधान होके मनुष्य समाधि योग को शीघ्र प्राप्त हो जाता है।' कुछ अन्य योग-सूत्रों अथवा योगाङ्गों पर स्वामीजी की अपनी व्याख्या इस प्रकार है :

ब्रह्मचर्य—

'ब्रह्मचर्य्य सेवन से यह बात होती है कि जब मनुष्य बाल्यावस्था में विवाह न करें उपस्थ इन्द्रिय का संयम रक्खे, वेदादि शास्त्रों को पढ़ता-पढ़ाता रहे, विवाह के पीछे ऋतुगामी बना रहे और परस्त्री गमन आदि व्यभिचार को मन कर्म वचन से त्याग देवे, तब दो प्रकार का बल बढ़ता है—एक शरीर

पृष्ठ २१ का शेष—

ठीक कहा है- 'हथ कार बल, दिल यार बल'—इसका मतलब यह है कि हर एक काम को नेकी से निभाना और हर समय बुरे कामों से हटना पर भारतवर्ष उससे उल्टा चला। ईश्वर का नाम जपता रहा और एक दूसरे को ठगता रहा जिसका परिणाम भी ठीक वैसा ही निकला है।

——o——

भारतवर्ष ही इस बात का दीवाना है। इसलिए देख लो इसका बिगड़ा हुआ जमाना है।

बेकायदा दुनिया नहीं छोड़ी जा सकती। पैसा तो पास नहीं पर उसकी इच्छा बनी रहती है। वे धन को क्या छोड़ेंगे जिनसे धन की व्यर्थ इच्छा ही नहीं छूटती। इसी तरह हर एक स्थान को समझ लेना चाहिए। ऐसी बेढंगी चाल से कौन नियत स्थान तक पहुँच सका है। इस प्रकार की गलत कोशिश करने से कोई नेक नतीजा निकल सकता है? कदापि नहीं। अधूरे उपदेशों से, प्रभाव-रहित शिक्षाओं से, उपाय-हीन चेष्टा से, स्वार्थता के बहकाने से, व्यर्थ झगड़े उठ जाने से स्पष्ट हो रहा है कि भारतवर्ष आज से नहीं परन्तु बहुत समय से बिगड़ता ही चला आता है। यह बात सत्य है कोई किस्सा-कहानी नहीं जमाना गवाही दे रहा है बहाना नहीं। कोई भी काम छोटा हो या बड़ा गुप्त हो या स्पष्ट तब तक सुचारु रूप से न आएगा जब तक नेक हाथों में न जायेगा। दुनिया वाले बेमाल और उसे छोड़ने वाले मालामाल। हाँ, उनमें नेक मनुष्य भी मौजूद हैं, सबको एक-सा बताना तो पाप-मार्ग में जाना है। कुछ समझदार तो संसार का हाल देखकर उदासीन चुपचाप बैठे हैं और जो कुछ काम उनकी सहायता से हो रहा है, वे बहुत कम संख्या में हैं। यूँ तो एक मनुष्य भी काफी होता है जो शुद्ध आचरण वाला, झूठ और धोका-देही से दूर, लोक-सेवा में तत्पर, विद्या-युक्त और कर्तव्य में निपुण हो। ऐसा मनुष्य, यदि प्रभु की कृपा हो, तो आये जिसके सत्य उपदेशों से अज्ञान-रूपी अन्धकार दूर हो जाये। इसीलिये विद्वान् ने ठीक कहा है कि दुनिया से अलहदा होने को मैं तुम्हें नहीं कहता हूँ, उस काम को कर, फिर किसी से न डर। अविनाशी, सर्वगुण-सम्पन्न, प्रकाशवान्, सबसे नजदीक और सबसे दूर, निराकार, सर्व-शक्तिमान्, सृष्टि के शासक, जिसके बराबर या बढ़कर और कोई नहीं, यह सब उसके साधारण गुण हैं। वह सर्व-व्यापक और निर्लेप स्वयं कभी दृष्टिगोचर नहीं होता पर सबको देखने में समर्थ है। उसे भूलकर अपना जीवन मत बिता। स्वयं उस पर आचरण कर और दूसरों से करा। जिसे उसकी याद है, वह सदा प्रसन्न चित्त है। जो उससे दूर है, वह सदा लाचार व मजबूर है। जिस चीज के लगाव में पड़कर मनुष्य उसे भूल जाता है, विद्वानों ने उसे दुनिया कहा है और वही सच्चा दुनियादार है। और दुनिया में रहता हुआ भी, जैसे कमल का पत्ता जल में रहता हुआ उसके प्रभाव से खाली रहता है, उसको भूलता नहीं है वही सच्चा वैरागी है। यह सच है संसार बेगाना है। ध्यानपूर्वक देख लो, झूठ नहीं, सत्य है, समय निकल जाता और फिर मनुष्य पछताता है पर हाथ कुछ नहीं आता। इसलिये किसी ने

महर्षि दयानंद और योग

[श्री देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य']

आर्य समाज के प्रवर्तक और वेदार्थों के अद्वितीय व्याख्यता महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं एक बहुत बड़े योगी थे तथा योग के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी, यह तथ्य उनकी जीवनचर्या के अवलोकन और उनके विरचित ग्रन्थों के अध्ययन से भली प्रकार विदित हो जाता है। जैसे आप्त ग्रन्थों के नाम पर फैलाये गये आडम्बरों और पाखण्डों का उन्होंने खुलकर विरोध किया है वैसे ही योग और योग-दर्शन के नाम पर चलाये जा रहे पाखण्ड और आडम्बर के भी वे प्रबल विरोधी थे। चमत्कार दिखाना या चमत्कार प्रदर्शन की आड़ में- भोली और भावुक जनता के मन को भ्रमित कर देने मात्र को—वे योग अथवा उसका कोई अङ्ग मानने को तय्यार नहीं थे।

अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के उपासना विषयक प्रकरण में ऋषि ने अथर्ववेद और यजुर्वेद के कतिपय मन्त्र उद्धृत करते हुए योगोपासना पर सबसे अधिक बल दिया है तथा यम-नियम की परिपालना की संपुष्टि करते हुए उनकी विस्तृत व्याख्या की है।

ऋग्वेद अध्याय ४ और यजुर्वेद अध्याय ११ के मन्त्रों के उद्धरण के साथ उन्होंने (ऋषि ने) अपने उपासना विषय का आरम्भ किया है जिसमें योगोपासना पर ही बल दिया गया है। यथा—

युञ्जते मन युत युञ्जते धियो,
विप्रा विप्रस्य बृहुता विपश्चितः
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक,
इन्मही देवस्य सवितुः परिष्ठुतिः ॥

ऋ० अ० ४/व/२४/१

'युञ्जते' शब्द की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है। उपासना समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें।

आगे श्री महर्षि पुनः लिखते हैं—और जो लोग ईश्वर के उपासक (विप्रः) अर्थात् बड़े-बड़े बुद्धिमान (होत्राः) उपासना योग के ग्रहण करने वाले हैं वे (विप्रस्य) सबको जानने वाला, (बृहतः) सबसे बड़ा (विपश्चितः) और सब विद्याओं से युक्त जो परमेश्वर है उसके बीच में (मनः युञ्जते) अपने मन को ठीक-ठीक युक्त करते हैं। तथा (उतधियः) अपनी बुद्धि वृत्ति अर्थात् ज्ञान को भी (युञ्जते) सदा परमेश्वर में ही स्थिर करते हैं। जो परमेश्वर सब जगत को (विदधे) धारण और विधान करता है (वयुनाविदेक इत्) जो सब जीवों के ज्ञानों तथा प्रजा का भी साक्षी है वही एक परमात्मा सर्वत्र व्यापक है कि जिससे परे को कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। (देवस्य) उस देव अर्थात् जगत के प्रकाश और सवितुः) सबकी रचना करने

वाले परमेश्वर की (परिष्टुति) हम सब लोग सब प्रकार से स्तुति करें। कैसी है। वह स्तुति-मही– सबसे बड़ी अर्थात् जिसके समान किसी दूसरे की हो ही नहीं सकती।

युञ्जानः प्रथमं मनः,
तत्वाय सविता धियम्।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य,
पृथिव्या अध्याभरत ॥

यजु० अ० ११ मं० २

(युञ्जानः। योग को करने वाले मनुष्य (तत्वाय) तत्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिए प्रथम मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं तब (सविता) परमेश्वर उनकी (धियम्) बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके (अध्याभरत्) यथावत् धारणा करते हैं। (पृथिव्या) पृथिवी के बीच में यही योगी का लक्षण है।

अर्थात् योगी वही है जिसका मन परमात्मा में लीन हो गया है।

आगे यजुर्वेद के दूसरे मन्त्र में भी योगी-पासना की महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है :

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्गाय शक्त्या ॥

अर्थात् सब मनुष्य इस प्रकार की इच्छा करें कि (वयम्) हम लोग (स्वर्गाय) मोक्ष सुख के लिए (शक्त्या) यथायोग्य सामर्थ्य के बल से (देवस्य) परमेश्वर की सृष्टि में उपासना योग करके अपने आत्मा को शुद्ध करें कि जिससे (युक्तेन मनसा) अपने शुद्ध मन से परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द को प्राप्त हों।

यजुर्वेद के १२वें अध्यायका एक और मंत्रांश लीजिए।

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।

अर्थात् हे उपासक लोगों तुम योगाभ्यास तथा परमात्मा के योग से नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द को विस्तार करो। इस प्रकार करने से (कृते योनौ) योनि अर्थात् अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके और परमानन्द स्वरूप परमेश्वर में स्थिर करके उसमें उपासना विधान से विज्ञान रूप (बीजं) बीज को अच्छी प्रकार से बोओ।

महर्षि ने आगे एक और मन्त्र का उल्लेख करते हुए उसका अर्थ इस प्रकार किया है :

हे परमेश्वरर्या युक्त मंगलमय परमेश्वर आपकी कृपा से मुझको उपासना योग प्राप्त हो तथा उससे मुझको सुख भी मिले। इसी प्रकार आपकी कृपा से दश इन्द्रिय, दश प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार, विद्या स्वभाव शरीर और बल ये अट्ठाईस सब कल्याणों में प्रवृत्त होके उपासना योग को सदा सेवन करें तथा हमभी उस योग के द्वारा रक्षा को और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहते हैं इत्यादि।

स्वामीजी ने योगाङ्गों और महर्षि पतञ्जलि के यौगिक सूत्रों पर अपनी महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है। कतिपय उद्धरण पढ़िए :—

'चित्त की वृत्तियों को सब वृत्तियों से हटाकर शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं। और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराइयों में फंसकर उससे दूर हो जाना।'

'जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध द्वारा रोक देते हैं वह जिस ओर नीचा होता है वहीं चल के कहीं ठहर जाता है इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है। एक तो चित की वृत्ति के रोकने का यह प्रयोजन है और दूसरा यह कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है। और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की तो ज्ञान रूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फँसती जाती है।

चित्तवृत्ति की ऐसी व्याख्या करके उन्होंने योग की महत्ता का वर्णन करते हुए प्राणायाम, ब्रह्मचर्य शौच आदि सभी को अपनाने पर बल दिया है।'

ईश्वर प्रणिधान योगी के लिए अति आवश्यक है। स्वामीजी ने इसीलिए लिखा है—'ईश्वर में विशेष भक्ति होने से मन का समाधान होके मनुष्य समाधि योग को शीघ्र प्राप्त हो जाता है।' कुछ अन्य योग-सूत्रों अथवा योगाङ्गों पर स्वामीजी की अपनी व्याख्या इस प्रकार है :

ब्रह्मचर्य—

'ब्रह्मचर्य सेवन से यह बात होती है कि जब मनुष्य बाल्यावस्था में विवाह न करें उपस्थ इन्द्रिय का संयम रक्खे, वेदादि शास्त्रों को पढ़ता-पढ़ाता रहे, विवाह के पीछे ऋतुगामी बना रहे और परस्त्री गमन आदि व्यभिचार को मन कर्म वचन से त्याग देवे, तब दो प्रकार का बल बढ़ता है—एक शरीर

पृष्ठ २१ का शेष—

ठीक कहा है—'हथ कार वल, दिल यार वल'—इसका मतलब यह है कि हर एक काम को नेकी से निभाना और हर समय बुरे कामों से हटना पर भारतवर्ष उससे उल्टा चला। ईश्वर का नाम जपता रहा और एक-दूसरे को ठगता रहा जिसका परिणाम भी ठीक वैसा ही निकला है।

—o—

का, दूसरा बुद्धि का। उसके बढ़ने से मनुष्य अत्यन्त आनन्द में रहता है।

अपरिग्रह —

'अपरिग्रह का फल यह है कि जब मनुष्य विषयासक्ति से बचकर सर्वथा जितेन्द्रिय रहता है तब मैं कौन हूं कहां से, आया हूं और मुझको क्या करना चाहिए अर्थात् क्या काम करने से मेरा कल्याण होगा। इत्यादि शुभ गुणों का विचार उसके मन में स्थिर होता है।'

'यह यम कहाते हैं इनका ग्रहण करना उपासकों को अवश्य चाहिए।'

शौच —

'शौच से अन्तःकरण की शुद्धि मन की प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों का जय तथा आत्मा के देखने और जानने की योग्यता प्राप्त होती है।'

देश बन्ध और धारणा —

'जब उपासना योग के उपरोक्त पाँचों अंग सिद्ध हो जाता है तब उसका छठा अंग धारणा भी यथावत प्राप्त होती है। 'धारणा' उसको कहते हैं कि मन को चञ्चलता से छुड़ा के नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके, ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है, उसका विचार करना।'

'तथा (तत्र प्र०) धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में, अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ, इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना। इसी का नाम 'ध्यान है।'

इन सात अङ्गों का फल समाधि है— (तदेवार्थ०) जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके, अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं। ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है, कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला, जिस मन से, जिस चीज का ध्यान करता है, ये तीनों विद्यमान रहते हैं। परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्दस्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है। वहाँ तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न हो के फिर बाहर को आ जाता है।

(त्रयमेकत्र०) जिस देश में धारणा की जाय, उसी में ध्यान, और उसी में समाधि, अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्न हो जाने को 'संयम' कहते हैं। जो एक ही

काल में तीनों का मेल होता है, अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान, और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है, उनमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है। परन्तु जब समाधि होती है, तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है।

यह उपासनायोग दुष्ट मनुष्य को सिद्ध नहीं होता, क्योंकि (नाविरतो०) जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग होकर, अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं करता, तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े वा सुने, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

(तपःश्रद्धे०) जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा में अत्यन्त प्रेम करके, अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं, वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं। जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़, तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान् हैं, जो भिक्षाचार्य्य आदि कर्म करके संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य (सूर्य्यद्वारेण०) प्राणद्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके, (विरजाः) अर्थात् सब दोषों से छूट के, परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं, जहां कि पूर्ण पुरुष, सब में भरपूर, सबसे सूक्ष्म, (अमृतः) अर्थात् अविनाशी, और जिसमें हानि लाभ कभी नहीं होता, ऐसे परमेश्वर को प्राप्त होके, सदा आनन्द में रहते हैं।

जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहें, उस समय इस रीति से करें कि—(अथ यदिद०) कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में, और उदर के ऊपर जो हृदयदेश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है, और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर भर रहा है; वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।

और कदाचित् कोई पूछे कि (तं चेद् ब्रू्यु०) अर्थात् उस हृदयाकाश में क्या रक्खा है जिसकी खोजना की जाय।

तो उसका उत्तर यह है कि (स ब्रूयाद्०) हृदय देश में जितना आकाश है, वह सब अन्तर्यामी परमेश्वर ही से भर रहा है, और उसी हृदयाकाश के बीच में सूर्य्य आदि प्रकाश, तथा पृथिवीलोक, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, बिजुली और सब नक्षत्र लोक भी ठहर रहे हैं। जितने दीखने वाले और नहीं दीखने वाले पदार्थ हैं, वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं।

(तं चेद् ब्रू्यु०) इसमें कोई ऐसी शङ्का करे कि जिस ब्रह्मपुर हृदयाकाश में सब भूत और काम स्थिर होते हैं, उस हृदय देश के वृद्धावस्था के उपरान्त नाश हो जाने पर उसके बीच में क्या बाकी रह

जाता है, कि जिसको तुम खोजने को कहते हो ?

तो इसका उत्तर यह है—(स ब्रूयात्०) सुनो भाई ! उस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है, उसको न तो कभी वृद्धावस्था होती है, और न कभी नाश होता है। उसी का नाम सत्य ब्रह्मपुर है, कि जिसमें सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं। वह (अपहतपाप्मा) अर्थात् सब पापों से रहित, शुद्धस्वभाव, (विजरः) जरा अवस्थारहित, विशोकः शोक-रहित, (विजिघत्सोऽपि०) जो खाने-पीने की इच्छा कभी नहीं करता, (सत्यकामः) जिसके सब काम सत्य हैं, (सत्यसंकल्पः) जिसके सब संकल्प भी सत्य हैं। उसी आकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा प्रवेश कर जाती है, और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाशित होती है। इस पूर्वोक्त उपासना से उपासक लोग जिस जिस काम को, जिस जिस क्षेत्र भाग अर्थात् अवकाश की इच्छा करते हैं, उन सबको वे यथावत् प्राप्त होते हैं।

उपासना के भेद—

योग-दर्शन के सूत्रों की उपर्युक्त व्याख्या अपने विचारों के अनुसार करते हुए महर्षि ने अन्त में उपासना के दो भेद बताये हैं।

१ सगुण, और २- निर्गुण।

शुक्र अर्थात् जगत का रचने वाला वीर्य-वान तथा शुद्ध काव, मनीषी, परिभू, और स्वयंभू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है, और अकाय, अव्रण अस्नाविर इत्यादि गुणों के निषेध होने से वह निर्गुण कहाता है तथा एको देवः—एक देव इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण और निर्गुणादि इसके कहने से निर्गुण समझा जाता है तथा ईश्वर के सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, सनातन, न्यायकारी, दयालु, सब में व्यापक, सबका आधार, मंगलमय, सबकी उत्पत्ति करने वाला, और सबका स्वामी इत्यादि सत्य गुणों की ज्ञानपूर्वक उपासना करने को सगुणोपासना कहते हैं। और वह परमेश्वर कभी जन्म नहीं लेता निराकार अर्थात् आकार वाला कभी नहीं होता, अकाय अर्थात् शरीर कभी नहीं धारता अव्रण अर्थात् जिसमें छिद्र कभी नहीं होता जो शब्द, रूप, रस और गन्ध वाला कभी नहीं होता जिसमें दो-तीन आदि संख्या की गणना नहीं बन सकती, जो लम्बा चौड़ा हल्का भारी कभी नहीं होता, इत्यादि गुणों के निवारण पूर्वक उनका स्मरण करने को निर्गुण उपासना कहते हैं।'

इस प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने योग की उपासना और योग के अनुसार जीवन-यापन से मनुष्य की मुक्ति सम्भव है तथा योग मार्ग का अवलम्बन ही उसका चरम लक्ष्य होना चाहिए इसकी पुष्टि पद पद पर की है। हम प्रारम्भ में लिख चुके हैं कि स्वयं वे एक बहुत बड़े योगी थे तथा उनकी समूची जीवन चर्या योग-धर्म से ओत-प्रोत थी।

वासना का बीज

[आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा]
एम० ए० एम० एड०

संसारी जीव रात-दिन नाना प्रकार के मनोरथ बनाते रहते हैं। मन के संकल्प समुद्र में उठी हुई लहरों की तरह चित्त को चञ्चल बना डालते है। उन लहरों को शान्त करने के लिए अनेक क्रिया प्रतिक्रियाएँ शुरू हो जाती हैं और कर्म का चक्र घूमने लगता है। जब कर्म का सुखद परिणाम निकलता है तो मन में प्रसन्नता होती है और फल के प्रति लगाव हो जाता है। इससे भिन्न अवस्था में मन दुःखदाई परिणाम से द्वेष करने लगता है और उसको दूर करने के कारण की तलाश में लग जाता है। यह भी कर्म का दूसरा चक्र है। द्वेषवश वह उस दुःखदायी पदार्थ या वस्तु को अपने रास्ते से हटाने का संकल्प कर लेता है। इस प्रकार संकल्पों से उत्पन्न कर्मों के फल के साथ मन का लगाव बढ़ता जाता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो इच्छा जाग्रत अवस्था में पूरी नहीं हो सकी उसे स्वप्न में हम पूरा करते हैं। उन क्रियाओं से भी कर्माशय बनता है। स्वप्न में भी जो पूरी न हो सकी वे अगले जन्मोंमें पूरी होती देखी जाती है। शिरड़ी के भूतपूर्व साँइ बाबा के जीवन का इस प्रसंग में एक संस्मरण याद आता है। वे एक वृक्ष की छाया में बैठे थे। पास की झाड़ियों से मेढक के टर्राने की आवाज आई और चिड़ियां चिल्लाकर चारों ओर उड़ने लगीं। बाबा के साथ बैठे हुए भक्त ने कहा—महाराज, यहाँ साँप लगता है। सांई बाबा हँसे और बोले—तुम ठीक कहते हो। इन दोनों को पूर्वजन्म की बुराई के कारण तो सांप और मेंढक का शरीर मिला। अब भी चैन से नहीं रहना चाहते। पूर्वजन्म की शत्रुता को इस जन्म में भी निभा कर अपना अगला जीवन नष्ट कर रहे हैं। भक्त बोला—महाराज यह सब आप क्या कह रहे हैं? बाबा बोले—मैं ठीक कहता हूँ। पूर्वजन्म में यह दोनों भाई थे। सम्पत्ति के बँटवारे पर परस्पर द्वेष हो गया और कालान्तर में दोनों की मृत्यु हो गई। इन्होंने उस जन्म में मेरे दर्शन किये थे। अतः इस जन्म में भी इन्हें दर्शन देकर मैं इनका कल्याण करने के लिए यहाँ आया हूँ। इतना कहकर वे झाड़ियों के पास जाकर उनके पूर्व जन्म का नाम लेकर बोले—अरे मूर्खो अब भी तुमने लड़ना नहीं छोड़ा! इतना सुनना था, सर्प ने आधे निकाले हुए मेंढक को मुँह से बाहर निकाल दिया और शर्म के मारे मानों वहीं के वहीं गड़ गया। बाबा ने दोनों को प्रेम से रहने का उपदेश देकर विदा कर दिया।

वृक्ष को भले ही नष्ट कर दिया जाय उसके बीज को नष्ट करना लोहे के चने चबाने के समान है। साधारण गृहस्थियों की तो बात ही क्या बड़े-बड़े साधु संन्यासी भी बीज रूप से विद्यमान भोगासक्ति के कारण

अपने पथ से भ्रष्ट होते देखे जाते हैं। लोग घर को आसानी से छोड़ देते हैं किन्तु घर की वासना उनसे नहीं छूट पाती।

परिणामस्वरूप संन्यासी बनने के बाद भी वे गृहस्थों की तरह ही आश्रम और सम्पत्ति के चक्कर में पड़े शाश्वत आनन्द से वंचित होकर अपनी परिश्रम की कमाई गवाँ बैठते हैं। अयोध्यावासियों में भगवान राम के वन-गमन के समय तीव्र वैराग्य उमड़ा। सभी भगवान के साथ वन चलने का निश्चय लेकर साथ चल पड़े। अपना घर, चारपाई, बिस्तर, नौकर-चाकर सब कुछ छोड़कर जैसे बैठे थे वैसे ही साथ चल पड़े। पर मार्ग में उन्हें नींद आ गई और आनन्दकन्द राघवेन्द्र से उनका वियोग हो गया। चारपाई तो उन्होंने छोड़ दी थी किन्तु उसका आनन्द (नींद) नहीं छोड सके। अतः जब शरीर मार्ग की थकावट से थोड़ा-सा क्लान्त हुआ कि नींद रूपी वासना का बीज वृक्ष बन गया। सभी घोड़े बेचकर सो गये। भगवान सदा सचेत और जागरूक साधक को ही दर्शन देते हैं। जीवन में जहाँ तम आया कि उससे विछोह हुआ।

प्रतापभानु नरेश ने अपने जीवन में सत्संग, स्वाध्याय सभी कुछ किया। उसके पास धर्म, अर्थ, काम तीनों वर्गों की यथेष्ट उपलब्धि थी। उसके हृदय में प्रभु-चरणों की प्रीति और निष्काम कर्म की प्रवृत्ति सदैव विद्यमान थी।

'हृदय न कछु फल अनुसन्धाना।
भूप विवेकी परम सुजाना॥'
करइ जे धर्म करम मन बानी।
बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी॥'

ज्ञान विज्ञान तृप्त, परम ऐश्वर्य-सम्पन्न, राजा प्रतापभानु के जीवन में कपट-मुनि के कुसंग के कारण जीवन की अनेक प्रसुप्त वासनायें उसी प्रकार अंकुरित हो गयीं जिस प्रकार पृथ्वी पर पड़े हुए अनेक बीज वर्षा ऋतु में अनुकूल जलवायु मिलने से अंकुरित हो जाते हैं। साधन, भजन, सत्संग के प्रभाव से जीवन का उत्तरोत्तर उत्कर्ष अवश्य होता है किन्तु उससे यह न समझ बैठना चाहिये कि साधक का कभी पतन नहीं हो सकता। न जाने किस कोने में पड़ी जन्म-जन्मान्तर की वासना का बीज कुसंग पाकर विशाल दुःख का वृक्ष बन जाये और जीवन को प्रतापभानु की तरह अधोगामी बना डाले। प्रतापभानु के जीवन की छोटी-सी भूल का परिणाम यह हुआ कि उसे राक्षस कुल में जन्म लेना पड़ा। इसी प्रकार जड़ भरत के जीवन की छोटी-सी भूल का परिणाम यह हुआ कि उसे राक्षस कुल में जन्म लेना पड़ा। इसी प्रकार जड़ भरत के जीवन के अन्तिम क्षणों में मृग-शावक के प्रति आसक्तरूपी वासना के बीज के अंकुरित होने से उन्हें मृगयोनि में जन्म लेना पड़ा। शास्त्र का यह नियम है कि 'अन्त-मता सो गता।' मृत्यु के क्षणों में मन जिस

भावभूमि में अधिष्ठित हो जाता है, उसी भाव में उसे जन्म ग्रहण करना पड़ता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस सिद्धान्त को संक्षेप में इस प्रकार कहा गया है :—

यं यं वापि स्मरन् भावं
त्यजति अन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय
सदा तद्भाव भावितः ॥

तथा—

ओ३म् इति एकाक्षरं ब्रह्म
व्याहरन मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहम्
स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात् ओ३म् अक्षररूपी ब्रह्म का उच्चारण और प्रभु का चिन्तन करता हुआ देह त्याग करता है, वह उच्चतम गति को प्राप्त होता है। ईश्वर में लीन होने पर जन्म-मरण के दुःख का आत्यन्तिक नाश होता है। जब तक जीव में अस्मिता का भाव विद्यमान रहता है तब तक 'पुनरपि जन्मं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनं' का चक्र चलता ही रहता है।

भगवान बुद्ध वासना को दुःखों का मूल कारण मानते हैं। वासना दुःख समुदाय है। इन्द्रिय-सुखों की वासना, जीवित रहने की वासना तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने की वासना दुःखों का मूल कारण है। वासना को दूर कर देने से निर्वाण प्राप्त होता है। बौद्ध-सिद्धान्त आलय-विज्ञान को बहुत महत्त्व देता है। आलय विज्ञान में जीव के अन्दर कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार की वासना के बीज एकत्रित रहते हैं और समय आने पर व्यवहार रूप में यही बीज जगत में पल्लवित होते हैं और फिर आलय में समा जाते हैं। जैन आचार्यों की मान्यता है कि वासना-रूप अविद्या और अज्ञान के कारण जीव कर्म-बन्धन के फलों का भोक्ता बनता है। योग-दर्शन की भी यही मान्यता है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान जीवन को देने वाला कर्माशय है जो क्लेशमूल है—'क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि क्लेशप्रद हैं। इन्हीं से संस्कार और वासना के वृक्ष और बीज बनते रहते हैं। वासना के परिणामस्वरूप जाति आयु और भोग प्राप्त होता है। जब तक कर्माशय विद्यमान रहता है तब तक उसमें वासना के बीज विद्यमान रहते हैं। वासना के नष्ट हो जाने पर कर्माशय नष्ट हो जाता है। 'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणः' अर्थात् विवेक ज्ञान की अग्नि से कर्म का बीज दग्ध हो जाता है। बीज के दग्ध हो जाने पर फिर वह अंकुरित होने में समर्थ नहीं होता। योगदर्शन के भाष्य में भगवान व्यासदेवजी कहते हैं :—

'यथा तुषावनद्धाः शालितण्डुला अदग्धबीजभावाः प्ररोह समर्था भवन्ति नापनीततुषा दग्धबीजभावा वा, तथा क्लेशावनद्धः कर्माशयो विपाकप्ररोही

भवति नाप नीत क्लेशी न प्रसंख्यान-दग्धबीजभावो वा ।'

जिस प्रकार छिलके-सहित धान के चावल तथा बिना अग्नि में भुने बीज अंकुरित होने में समर्थ होते हैं किन्तु यदि धान का छिलका उतार के चावल को बोया जाय या अग्नि में भून कर किसी अन्य बीज को बोया जाय तो उससे अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता, उसी प्रकार अविद्या आदि क्लेशों से युक्त कर्माशय जन्म-मरण रूपी अंकुर उत्पन्न करने में समर्थ होता है। यदि प्रकृति-पुरुष के विवेक ज्ञान अग्नि से क्लेशों को जला दिया जाय अथवा त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त कर अविद्या के छिलके को हटा दिया जाय तो कर्माशय से होने वाला जन्म, आयु और भोग का परिणाम नष्ट हो जाता है। प्रकृति और पुरुष का संयोग ही बन्धन है और प्रकृति-पुरुष संयोग का वियोग ही मोक्ष है। भगवान पतंजलि ने इस अवस्था को कैवल्य अवस्था कहा है। कैवल्य अवस्था प्राप्त करने का साधन विवेक ख्याति है—

'विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।'

२६ साधनपाद।

इस सूत्र की व्याख्या में व्यासदेव जी लिखते हैं—

'सत्त्वपुरुषान्य प्रत्ययो विवेकख्याति। सा त्वनिवृत्तमिथ्याज्ञानाप्लवते। यदा मिथ्याज्ञानं दग्धबीजभावं बन्ध्यप्रसवं संपद्यते तदा विधूतक्लेश रजसः सत्त्वस्य परे वैशारद्ये परस्यां वशीकारसंज्ञायां वर्त्तमानस्य विवेकप्रत्यय प्रवाहो निर्मलो-भवति। सा विवेकख्यातिः अविप्लवा हानोपायः।'

अर्थात् प्रकृति से पुरुष को भिन्न करके मिथ्या ज्ञान रूप विप्लव से रहित जो पुरुष का साक्षात्कार है वह संसार निवृत्ति रूप होने का साधन है। इसी भेद-विज्ञान का नाम विवेक ख्याति है। जिस अवस्था में मिथ्याज्ञान जले हुए बीज की तरह होकर अंकुर उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है, उस अवस्था में स्थितचित्त में विवेकज्ञान का प्रवाह रजोगुण के क्लेश से रहित परवशीकार संज्ञा में स्थित होकर निर्मल हो जाता है। यह विवेक ज्ञान मोक्ष प्राप्त करने का उपाय है। विवेक ज्ञान प्राप्त योगी को सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाली प्रज्ञा प्राप्त होती है जिससे निश्चय कर लेता है कि 'क्षीणाक्षीण क्लेशाः साक्षात्कृत निरोध समाधिनाहानम्।' अर्थात् क्षीण करने वाले अविद्यादि दोष क्षीण हो चुके तथा असम्प्रज्ञात समाधि के द्वारा मैंने संसारनिवृत्ति रूप होने को प्रत्यक्ष कर लिया। अब कुछ जानने योग्य शेष नहीं है।

विवेक ख्याति की प्राप्ति के बिना जन्म-जन्मान्तर की वासनाओं के बीज किसी न

किसी कोने में छिपे पड़े रह सकते हैं। अतः उनको छिलका रहित या दग्ध बीज भाव करने के लिये यम, नियम, आसन आदि अष्टांग योग का अभ्यास एकमात्र उपाय है। भगवान् पतंजलि देव कहते हैं—

योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥

अर्थात् अष्टांगयोग के अभ्यास से वासना का क्षय होता है। पाप-पुण्य रूप अशुद्धि का क्षय होने पर यथार्थ ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है और उत्तरोत्तर जैसे-जैसे साधन तीव्र होते जाते हैं, वैसे-वैसे ज्ञान के आलोक की वृद्धि होती है। ज्ञान की दीप्ति से साधक अपनी गांठ को हमेशा के लिये खोल लेता है और मुक्त हो जाता है। प्रथम क्रियायोग के अभ्यास से स्थूल क्लेशों को सूक्ष्म करके ध्यानयोग से सूक्ष्म क्लेशों को दग्ध करता हुआ असंप्रज्ञात समाधि से वासना के बीज का समूल नाश करता है। ईश्वर-आराधना के द्वारा भी ईश्वर की कृपा से साधक को श्रद्धा और विश्वास के बल पर सिद्धयोग (ईश्वर कृपा से निर्विकल्पक समाधि-स्थिति) की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु यह स्थिति हृदय-प्रधान सत्त्वगुण संयुक्त साधनों के जीवन में आ पाती है। तमोगुण और रजोगुण की सीमा में रहने वाले साधकों को सिद्धयोग की प्राप्ति के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि क्रियायोग का आश्रय लेना ही पड़ता है। जब बुद्धि रज-तम रूप मल से रहित तथा शुद्ध हो जाती है, उस दग्ध-बीजभाव अवस्था को विवेक ज्ञान कहा जाता है। सभी प्रकार के साधन, भजन का प्रयोजन यही है कि अविवेक दशा में जो बुद्धिगत भोग पुरुष में प्रतीत हो रहा था, वह विवेक दशा में प्रकृति के गुणों में भासने लगता है। दग्ध-बीज क्लेश वाले योगी को कैवल्य के लिये अन्य किसी साधन की अपेक्षा नहीं रहती। ज्ञान से अज्ञान निवृत्त हो जाता है और अज्ञान निवृत्त होने पर उससे अविद्यादि क्लेश, कर्म तथा परिणाम निवृत्त हो जाते हैं। इस अवस्था में सत, रज, तम गुण-भोग रूप से पुरुष के सम्मुख उपस्थित नहीं होते। इस प्रकार गुणों के अधिकार की समाप्ति होकर केवल प्रकाश स्वरूप हो जाता है।

पाप और पुण्य कर्मों, पाप-पुण्य से मिले-मिले कर्मों और पाप-पुण्य से रहित कर्मों के अनुसार ही वासना की अभिव्यक्ति जाति, देश और काल के रुकावट होने पर भी होती रहती है। यद्यपि वासना अनादि है तथापि नित्य नहीं है। यदि नित्य होती तो उसका उच्छेद कभी नहीं होता। वासना के चार आधार-स्तम्भ हैं- हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन। इन चारों के नाश होने पर वासना का नाश हो जाता है। भगवान पतंजलि निर्देश करते हैं :—

'हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥

॥४/११॥

अर्थात् वासना का हेतु अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश हैं और उसका फल जाति, आयु और भोग हैं तथा वासना का आश्रय चित्त है, एवं वासना का आलम्बन शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध आदि विषय हैं। सत्संग, स्वाध्याय, साधन, भजन से ये चारों अंग स्थूल अवस्था से पतली अवस्था को तो प्राप्त हो जाते हैं परन्तु उनका सर्वथा अभाव नहीं होता। जब तक वासना के चतुष्पाद विद्यमान हैं तब तक वासना विद्यमान है तब तक वासना विद्यमान है और उसका फल जन्म, मरण आदि कष्ट विद्यमान हैं। विवेकख्याति होने पर अविद्यादि का नाश होने से वासना और तज्जन्य संसार का विनाश हो जाता है। योग कुण्डलि उपनिषद् में वासनाजय के उपाय का निर्देश करते हुए कहा गया है कि वासना के आलम्बन और उद्दीपन रूप चित्त और वायु में से एक का भी नाश कर देने से दोनों का नाश हो जाता है। इसलिये साधक को सर्वप्रथम प्राणायाम से वायुजय करना चाहिये तथा मिताहार, आसन तथा शक्ति-चालन के द्वारा मन का निरोध करके वासना के बीज रूप चित्त का नाश करना चाहिये।

हेतुद्वयं हि चित्तस्य
वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्त
द्वावपि विनश्यतः॥

तयोरादौ समीरस्यजयं
कुर्यान्निरः सदा।
मिताहारश्चासनं च
शक्ति चालस्तृतीयक॥

जो भोजन चिकनाई युक्त मधुर तथा ताजा हो और ३/४ भाग पेट भर कर शरीर-पोषण के लिये नहीं अपितु ईश्वर को प्रसन्न करने की भावना से किया जाय वह मिताहार कहलाता है। आसनों में पद्मासन और वज्रासन सब पापों के नाश करने वाले कहे गये हैं। शक्तिचालन का अर्थ प्राणायाम के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान करना है। कुण्डलिनी शक्ति के उत्थान में प्रथम सरस्वती चालन करना चाहिये। सरस्वती-चालन से कुण्डलिनी शक्ति स्वयं जग जाती है। पद्मासन पर बैठकर मूलबन्ध, जलन्धर बन्ध और उड्यान बन्ध लगाकर प्राणायाम द्वारा सरस्वती चालन होता है जिससे गुल्म, जलंधर, प्लीहा आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ध्यानयोग के अभ्यास से योगी पूर्व पूर्व संस्कारों का साक्षात्कार करता हुआ सूक्ष्म और कारण शरीरों द्वारा अपने सभी संस्कारों का भुगतान करके गुण, अधिकार समाप्त परिणाम वाला हो जाता है। भगवान पतंजलि ने चित्त के प्रसव को दूर करने के उपायों का उल्लेख करते हुए कहते हैं :—

योग ही जीवन है।

[श्री पूर्णचन्द पन्त शास्त्री]
गिरिनगर (नाहन) हि० प्र०

आज के घोर कलिकाल में जबकि मानवता आदि-व्याधि से ग्रस्त होकर त्राहि-त्राहि कर रही है। मानव कर्त्तव्य और विवेक को खोकर पशुवत् स्वेच्छाचारी जीवन जी रहा है; उसे यह विचारने का बोध नहीं है, कि—

"कोऽहं कथमिदं जातं
को वै कर्त्तास्यविद्यते।"

मैं कौन हूँ? यह संसार कैसे बना और इसका सृष्टा कौन है? अज्ञान और अभिमानवश वह स्वयं को ही कर्त्ता समझकर तरह-तरह के प्रपञ्चों में संलग्न है। उसकी स्थिति ठीक उस मकड़ी की भाँति है, जो कि—सुखोपभोग की दुराशा लिए अपने चारों ओर जाल बुनती रहती है और अन्त में उसी जाल में फँसकर अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। धर्म में अनास्था और ईश्वर में अविश्वास ही आज मानव के दुःख दैन्य का मूल कारण है। ऐसे समय पर योग ही एकमात्र ऐसा सम्बल है, जो कि मानवता को पतन के गर्त से बचा सकता है और जीवन-नैया को सही दिशा प्रदान कर सकता है। योग ही एक ऐसा मार्ग है, जिसके अवलम्बन से मनुष्य अपने जीवन को सुखी बनाकर अन्त में इसी जन्म में जीवनमुक्त हो सकता है।

संस्कृत की "युज्" धातु से योग शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है—जोड़ना या लगाना। जगदात्मा श्री कृष्णचन्द्र ने "समत्वं योग उच्यते" कहकर योग शब्द की व्याख्या है। योगदर्शनकार भगवान श्री पतञ्जलिदेव ने "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" कहकर चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग का

पिछले पृष्ठ का शेष

'ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः।'

जिस प्रकार साबुन आदि स्थूल उपायों से वस्त्रों का झाड़ने के बाद बचा सूक्ष्म मल धोकर दूर किया जाता है, उसी प्रकार जो क्लेशों की स्थूल वृत्तियाँ हैं, उन्हें क्रियायोग के द्वारा सूक्ष्म करके ध्यानयोग रूप अग्नि के द्वारा जले हुए बीज के समान दूर कर देना चाहिये। विशुद्ध ज्योति-स्वरूप योगी लोक-व्यवहार के लिये विद्या का 'मैं' रख लेता है। रामकृष्ण परमहंसदेव कहते हैं कि विद्या के 'मैं' के रहने से कोई अनर्थ नहीं हो सकता। अविद्या के 'मैं' में संसार उत्पन्न करने की शक्ति है। अतः उसे तो नष्ट करना ही चाहिये। विद्या के 'मैं' को दास बनकर पड़ा रहने देने से छिलके-रहित धान की तरह वह कभी अनिष्ट का कारण नहीं बन सकता।

अर्थ बताया है। अतः चित्त की वृत्तियों पर निरोध करना, संयम करना, उन्हें इन्द्रियों के विषयों पर प्रवृत्त न होने देना और उन पर अपना पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेना यही योग की परिभाषा है। योग की चरम साधना समाधि लाभ है। जहाँ जीवात्मा और परमात्मा का संयोग होता है। जैसे कि दर्शाया गया है : –

"समाधिः समतावस्था जीवात्मा परमात्मनो "

अब प्रश्न उठता है, कि चित्त क्या है और उसकी वृत्तियाँ क्या है ?

चित्त—सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के मिश्रण से उत्पन्न है। यह क्रियाशील, परिणामी एवं जड़ है। यह शुद्ध स्फटिक मणि की भाँति उज्ज्वल है। अतः बाहरी पदार्थों के चिन्तन से उनका प्रतिबिम्ब पड़ने पर यह तदाकार बन जाता है। इस प्रकार चित्त को एक प्रकार का स्वचालित कैमरा भी कहा जा सकता है। जो कि सामने आने वाले पदार्थों के चित्र खींचता रहता है।

चित्त की पांच वृत्तियाँ बताई गई है :— (१) प्रमाण ; (२) विपर्यय ; (३) विकल्प ; (४) निद्रा ; (५) स्मृति। चित्त और उसकी वृत्तियाँ अत्यधिक चंचल हैं। यह स्वीकार करते हुए जगदात्मा श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन को इसके निरोध का उपाय बताते हैं :

असंशय महाबाहो !
मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय !
वैराग्येण च गृह्यते ॥

यही बात योगसूत्र में भी स्पष्ट की गई है :—

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।"

अर्थात्—सतत् अभ्यास एवं तीव्र वैराग्य से चित्तवृत्तियों पर संयम किया जासकता है।

योग के आठ अंग है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि, अष्टाङ्गयोग का पालन करने वाले योगी को आठ प्रकार की ही सिद्धियाँ भी प्राप्त होती है :—अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व एवं वशित्व।

मन अथवा चित्त जहाँ वायु के समान, चंचल है वहीं यह अनन्त शक्तिमान भी है। यही मनुष्य को सुख और दुःख की अनुभूति कराता है और यही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण भी है।

"मन एव मनुष्याणां कारण बन्ध-मोक्षयोः।"

जिस प्रकार नियन्त्रित विद्युत तथा आणविक शक्ति हर प्रकार के सृजन कार्य को करने में समर्थ होती है, ठीक उसी प्रकार नियन्त्रित मन अनन्त शक्तिमान बनकर असम्भव से असम्भव कार्य को करने में समर्थ हो जाता है। योगी एक ही समय में अनेकों रूपों को

धारण कर सकता है। जैसे कि कहा गया है—

अचिन्त्य शक्तिमान योगी
नानरूपाणि धारयेत्।

जीवन में योग का अत्यधिक महत्त्व है। यह मानव को केवल आत्मबोध ही नहीं कराता, बल्कि उसे स्वस्थ, संयमित एवं सुखी जीवन भी प्रदान करता है। यम-नियमों के अनुष्ठान से मनुष्य की बुद्धि सात्विक, पवित्र एवं स्फटिक मणि की भाँति उज्ज्वल हो जाती है, जिसमें आत्मा का स्वरूप स्पष्ट झलकता है। योगासन शरीर को स्वस्थ रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सभी प्रकार के आसन वैज्ञानिक नियमों पर आधारित हैं और असाध्य से असाध्य रोगों को निमूल करने में समर्थ होते हैं। नेति, धौति, वस्ति आदि यौगिक—क्रियायें आन्तरिक शुद्धि के लिए होती हैं। इससे मनुष्य का शरीर तो स्वस्थ रहता ही है, अन्तःकरण भी शान्त, पवित्र एवं प्रफुल्लित रहता है। प्राणायाम से हर प्रकार की क्लेश निवृति होती है।

धारणा एवं ध्यान से ईश्वर-साक्षात्कार होता है और उसी क्षण जीवात्मा का समस्त अज्ञान नष्ट हो जाता है।

जैसे कि श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है :—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः
छिद्यते सर्वसंशयः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,
तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

हमारी बुद्धि अज्ञानरूपी अन्धकार से आवृत्त है और उसका पर्दा हटते ही ईश्वर साक्षात्कार हो जाता है। जैसे कि—कहा गया है :—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यते अयनाय॥

अर्थात्—अज्ञानरूपी घोर अन्धकार से परे सूर्य के समान वर्णवाले उस महापुरुष को मैं जानता हूँ, उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को पार कर सकता है। मुक्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

कतिपय लोग योग का गलत अर्थ लगाते हैं। वे इसे किन्हीं प्रचलित आसनों तक ही सीमित मानते हैं। उनकी यह गलत धारणा है। योग शब्द का अर्थ जितना सरल है, वह स्वयं उतना ही व्यापक भी है। योगासन तो योगशिक्षा की एक श्रेणी है।

कुछ अन्य लोग योग को संन्यासियों का विषय मानते हैं। वे जनसाधारण के लिए उसकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। उनका यह भी कहना है कि—योग मनुष्य को पंगु तथा अकर्मण्य बना देता है। उनकी

यह महान् भूल है। उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए, कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने गीता के माध्यम से योग का जो पवित्र उपदेश दिया है, वह किसी पंगु को नहीं, बल्कि अर्जुन जैसे वीर पुंगव को दिया है, वह भी उसके मोह को दूर करने के लिए तथा उसे कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करने के लिए। गीता में आद्योपान्त कर्म करते रहने की ही प्रेरणा मिलती है। भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुख से यहाँ तक कहते हैं :—

नियतं कुरु कर्म त्वं
कर्मज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर यात्रापि च ते
न प्रसिद्धेदकर्मणः ॥

हे अर्जुन ! तू निरन्तर कर्म करता जा। कर्मों को तू यदि छोड़ना भी चाहे तब भी नहीं छोड़ सकता सकता। साथ ही कर्मों को त्याग देने से तेरी शरीर यात्रा भी नहीं चल सकती।

अतः यह मानना पड़ता है, कि योग वह पवित्र ज्ञानगंगा है, जो कि मानव जीवन में सतत उत्साह, उल्लास एवं सरसता का संचार करती रहती है और उसे कर्त्तव्य-बोध की प्रेरणा देती है। योग मानव को उसके असीम शक्ति भण्डार का बोध कराता है। योगशास्त्र हमें यह चेतावनी देता है, कि:—

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

अरे मानव ! तू सोया मत रह। अब भी समय है, उठ जाग और सत्पुरुषों के चरणों में बैठकर उनसे ज्ञान प्राप्त कर। यही उपदेश अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन को भी दिया है :—

तद्विद्धि प्रणिपातेन
परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं
ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः ॥

अर्थात्—हे अर्जुन तू इस पवित्र योग को तत्वदर्शी ज्ञानी महापुरुषों से प्राप्त कर सकता है। तुम्हारी अनुनय-विनय, सेवा एवं जिज्ञासा से सन्तुष्ट होकर वे अवश्य तुम्हें ज्ञान का उपदेश देंगे।

इस प्रकार योग साधन ही मानव का चरम पुरुषार्थ है। मानव जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की साधना अपेक्षित है। जो कि—योग से ही सम्भव है। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के बोध-पूर्वक जीवन की कुशलता से सही दिशा की ओर बढ़ाना ही योग है।

जैसा कि कहा है—

"योगः कर्मसु कौशलम्।"

जो लोग शास्त्रों की अवहेलना करके रात-दिन भोग-सामग्रियों के संग्रह और उनके उपभोग में ही लगे रहते हैं वे अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को व्यर्थ ही गंवा रहे हैं।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए, कि—

भोगाः न भुक्ताः वयमेवःभुक्ता
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णाः न जीर्णाः वयमेव जीर्णाः ॥

अर्थात्—भोगों का उपभोग हम नहीं कर रहे हैं, बल्कि हम स्वयं ही विविध भोगों द्वारा भोगे जा रहे हैं। तपाचरण हम नहीं कर रहे, बल्कि—हम स्वयं तपे जा रहे हैं। समय नहीं बीत रहा है। बल्कि हमारा जीवन ही बीतता जा रहा है हमारी वासनायें कभी वृद्ध नहीं होतीं अर्थात् क्षीण नहीं होतीं, जबकि—हम स्वयं वृद्ध हो जाते हैं।

अतः हमारा कर्त्तव्य है कि जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ न बीतने दें। हर समय हर स्थिति में योगसाधन करते रहें और इस अपने जीवन को पूर्णतया योगमय बना दें। योग की कितनी महत्ता है, इसकी स्पष्ट झलक निम्न श्लोक में मिलती है :

तपस्विभ्योऽधिको योगी,
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,
तस्माद् योगी भवार्जुनः ॥

अर्थात्—हे अर्जुन ! तपस्वी, ज्ञानी और कर्मनिष्ठ व्यक्ति इन तीनों से भी योगी श्रेष्ठतम् है। इसलिए तू योगी बन।

अन्त में मैं यही कहूँगा, कि—योग ही जीवन है और भोग ही मृत्यु है।

योग और योगी !

चित्त–वृत्तियों का निरोध ही कहलाता है योग।
और योग से मिट जाते हैं भव के सारे रोग॥
दृष्टा को स्वरूप-दर्शन का मिलता है संयोग
होता है कैवल्य सुलभ विष बन जाते हैं भोग॥
मिटती विविध भ्रान्तियां मन की, जाता ऊहा मोह।
परम पुरुष से मिल जाने की मिल जाती है टोह॥
मिलता है सागर अमृत का, सुखद शान्ति का कोष।
और योग पथ में मिलता है परम—पूर्ण सन्तोष॥
केवल योगी ही जाता है मृत्यु-उदधि के पार।
योगी को ही मिल पाती हैं प्रभु की शक्ति अपार॥

—दिव्य

क्रमशः]

❀ सुख-दुख और आनन्द ❀

[श्री ओमप्रकाश पालीवाल]

सुख, दुःख दोनों ही संसारी मनुष्यों के अनुभव के विषय हैं; यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आनन्द केवलमात्र योगी, संन्यासी के अनुभव की प्रतीति है।

आनन्द सुख नहीं है आनन्द दुःख तो हो ही नहीं सकता। सुख और दुःख जहां इन दोनों का अभाव है वह स्थिति ही आनन्द है। असल में दुःख की भी अपनी पीड़ा है और सुख की भी अपनी पीड़ा है दुःख तो दुःख है ही, जो जानते हैं वे कहते हैं, सुख भी दुःख का एक ढंग है। दुःख तो वह है जिसे हम नहीं चाहते और सुख प्रीतिकर है, जिसे हम चाहते हैं। बस इतना ही फर्क है। इसलिए कोई भी सुख किसी भी दिन दुःख हो जाता है। हमारी चाह हट जाती है, दुःख हो जाता है। कोई भी दुःख किसी भी दिन सुख बन सकता है, अगर हमारी चाह उससे जुड़ जाए, तो वह भी सुख बन सकता है। सुख और दुःख घटनाओं में नहीं होते, परिस्थितियों म नहीं होते, वस्तुओं में नहीं होते। सुख और दुःख हमारे चाहने में होते है। वह जो चाह है हमारे भीतर, उसका जरा-सा सम्बन्ध कहीं से भी शिथिल करलें, या जोड़लें, तो सब बदल जाता है। यह जो हमारा मन है, जिससे जुड़ जाता है, वही सुख मालूम होता है। सुख एक भ्रान्ति है, जो उसके साथ मालूम पड़ती है जिसमें मन जुड़ जाता है। दुःख भी एक भ्रान्ति है, जो उसके साथ मालूम पड़ता है, जिससे मन टूट जाता है। इस प्रकार सुख भी मन पर उसका एक तनाव है, जिसे हम पसन्द करते हैं। दुःख भी मन पर उसका एक तनाव है, जिसे हम पसन्द नहीं करते। ये दोनों ही मनुष्य के मन के लिए बोझ सिद्ध होते हो आनन्द अतनाव, उत्तेजना शून्य अवस्था है। न वहां दुःख है, न वहां सुख है, जहां न किसी से मिलना और न किसी से बिछुड़ना। जहां स्वभाव मे थिरता आ जाती है, वहां 'आनन्द' है। केवल योगी ही अपने स्वभाव में जीते हैं, शिव में जीते हैं, ब्रह्म में जीते हैं, बाहर नहीं, भीतर जीते हैं, 'पर' में नहीं 'स्व' में जीते हैं। वह जो भीतर में मूल-स्त्रोत है, उससे जुड़कर जीते हैं। वहां कोई दुःख नहीं, क्योंकि वहां कोई सुख नहीं। जहां सुख ही

नहीं, वहाँ दुख नहीं हो सकता। और जहाँ दोनों नहीं है, वहाँ जो रह जाता है शेष वह आनन्द है। इसलिए आनन्द स्वभाव है।

दुःख भी दूसरे से मिलता है और सुख भी दूसरे से मिलता है। दूसरा सदा निमित्त होता है। गाली भी कोई देता है, तो प्रशंसा भी कोई करता है, आनन्द स्वयं से मिलता है, दूसरे से नहीं। दुःख भी परतन्त्र है। दूसरा चाहे तो सुख खींच ले और दूसरा चाहे तो दुःख भी खींच लें। वह सब दूसरे के हाथ में है। आप गुलाम हैं लेकिन आनन्द स्वतन्त्र है। वह दूसरे के साथ नहीं मिलता। उसे दूसरा नष्ट नहीं कर सकता। दुख आता है, जाता है। सुख भी आता है और जाता है। जो न कभी आता है और न कभी जाता है, उसका नाम ही आनन्द है। जो है ही हमारे भीतर, जो हमारा स्वभाव है, स्वरूप है। जो भी आता है और जाता है, वह 'पर' भाव है। वह स्वभाव नहीं है। जो हम पर आ जाता है और चला जाता है वह हम नहीं है। हम तो वह हैं, जिस पर दुःख नहीं आता है, जिस पर सुख नहीं आता है। हम भिन्न हैं। जिस पर सुख-दुःख आते हैं, वह 'स्वभाव' आनन्द स्वरूप है। पर हमें उस स्वभाव का पता ही नहीं चलता। हम उसमें ही उलझे रहते हैं, जो आता है और जाता है। वह जो मालिक है घर का वह मेहमानों में खो गया है। घर का जो मालिक है, जो आतिथेय है वह अतिथियों की सेवा करते करते यह भूल ही जाता है कि मैं तो हूँ—अतिथियों से अलग भिन्न, पृथक। ऐसे ही हम अतिथियों की सेवा करते करते भूल ही गए हैं कि हम कौन हैं ?

दुःख जिसमें निवास कर लेता है, सुख जिसमें निवास कर लेता है, वह कौन है ? वह कौन है जो अनुभव करता है कि मैं दुःखी हो रहा हूँ वह कौन है जो अनुभव करता है कि मैं सुखी हो रहा हूँ। निश्चित ही वह सुख और दुःख से अलग है, क्योंकि अनुभव करने वाला अलग ही होगा। अनुभोक्ता पृथक ही होगा। अगर द्रष्टा दृश्य से अलग न हो, तो देखेगा कैसे ! देखने के लिए दूरी चाहिए तो जिसे हम देख पाते हैं, उससे हम भिन्न हो जाते हैं। इसीलिए हम परमात्मा को देख नहीं पाते। क्योंकि उससे हम भिन्न नहीं हैं देखेगा कौन, देखेगा किसको ? उसके साथ हम सब हैं। इन्द्रियां जो भी जानती हैं, उससे हम अलग हो जाते हैं। मन जो भी पहचानता है उससे हम अलग हो जाते हैं। यह जो सुख और दुख को जानता है जानने वाला है वह अलग है। यह भिन्न है वही स्वरूप है। इस स्वरूप में जो योग के द्वारा स्थिर हो जाते हैं वे सदैव आनन्द को अनुभव करते हैं।

जो योग युक्ति द्वारा इस भीतर के स्वरूप में स्थिर हो जाता है, रमण को उपलब्ध हो

जाता है, स्वयं में स्वस्थ हो जाता है, स्वयं में स्थिति हो जाता है। ऐसा योगी सदैव आनन्द में डूबा रहता है। क्या फिर उसके अन्दर दुःख नहीं आते? जरा नहीं आती, मृत्यु नहीं आती? नहीं, सभी कुछ आता है लेकिन उस पर नहीं आता। वह तो पार, दूर और अछूता खड़ा रहता है, अस्पर्शित कमल के पत्ते जैसा पानी की बूँद उस पर पड़ी है लेकिन फिर भी छूती नहीं। स्वरूप को आनन्द को अनुभव करने वाला योगी दुख से घिर सकता है लेकिन दुःख से तादात्म्य में नहीं पड़ता। अंधेरा उसे घेर ले सकता है, लेकिन वह स्वयं अन्धकार कभी नहीं होता। हमारे और योगी के बीच एक ही फर्क है। जो दुख घेरता है, हम उसके साथ अपने को एक ही मान लेते हैं। ऐसा हम नहीं कहते कि मुझ पर दुख आया करते है, मैं दुखी हो गया। एक तादात्म्य बना लेते है। हम चीजों से जुड़ जाते है और इतने जुड़ जाते है कि लगने लगता है, यही मैं हूँ। जैसे दर्पण में कोई तस्वीर बने और दर्पण समझे लेकिन यह तस्वीर मैं ही हूं। ऐसे हम हो जाते है। दुःख झलकता है भीतर। दुःख की छाया बनती है, तो मैं दुःखा हो जाता है। सुख आता है, तो मैं सुख हो जाता हूँ, अशान्ति आती है तो मैं अशान्त हो जाता है। अपने को अलग नहीं रख पाता, दूर नहीं रख पाता कि जो आ रहा है, वह मैं नहीं हो सकता, क्योंकि मैं तो उसके आने के पहले से ही मौजूद हूँ। जब दुख नहीं आया था, तब भी मैं था और जब दुःख चला जावेगा। तब भी मैं होवेगा, मेरा होना दुख के साथ एक नहीं हो सकता। कितना ही दुःख घेर ले, तब भी मैं किसी तल पर दूर ही खड़ा रह जाता हूँ। इस दूरी की प्रतीति, की इस तादात्म्य का टूट जाना ही योग है। योगी सदैव आनन्दस्वरूप में स्थिति, आनन्द का दर्शन करता रहता है। क्षणभर को भी फिर आनन्द स्खलित नहीं होता। क्षणभर को भी आनन्द से उसका सम्बन्ध टूटता नहीं।

योग प्रक्रिया द्वारा प्रवेश करता है भीतर वहाँ, जहाँ कोई आवरण नहीं है, जहाँ सिर्फ वही रह जाता है, जो जानने की क्षमता है। वह जानना मात्र एक ऐसी चीज है जिससे हम अपने को अलग नहीं कर सकते, जिससे हमारा तादात्म्य नहीं है जो हमारा स्वरूप ही है। और जिस दिन कोई जानने की शुद्ध क्षमता को उपलब्ध होता है, उसी दिन आनन्द से भर जाता है। इसी स्थिति को सच्चिदानन्द कहा है। सत्-चित्-आनन्द, सत् का अर्थ है, वह जो सदा रहेगा, जो कभी भी अन्यथा नहीं होगा। चित्त का अर्थ है चैतन्य, ज्ञान, बोध। जो सदा बोध से भरा रहेगा। और आनन्द का अर्थ जो सदा सुख, दुख के पार एक परम रहस्य में, आनन्द में, डूबा रहेगा।

हम आनन्द कभी नहीं चाहते, हम वह वह वस्तुएँ चाहते है जिनमें आनन्द मिले सीधा आनन्द हम कभी नहीं चाहते, धन चाहिए, पत्नी, चाहिए, ऐश्वर्य चाहिये आदि

आनन्द को सीधा कोई नहीं चाहता। कोई ऐसा नहीं मिलता जो कहता हो आनन्द चाहिए। धन, पद, कार हम क्यों चाहते हैं। इसलिए कि इनके मिलने पर आनन्द मिलेगा। धन तो मिल जाता है। पर आनन्द नहीं मिलता, ऐश्वर्य, पद मिल जाते हैं पर आनन्द नहीं मिलता। जो हमने सोचा था कि ये साधन तो मिल जाते हैं लेकिन साध्य हमें नहीं मिलता। असल में आनन्द का कोई भी साधन नहीं है। क्योंकि साधन उसके लिए होते हैं जो हम से दूर है। अगर मुझे उस पहाड़ पर चढ़ना हो तो साधन की जरूरत है चढ़ने के लिए पहुँचने के लिए मार्ग चाहिए, विधि चाहिए, कोई बताने वाला चाहिए, कोई संकेत वाला चाहिए। लेकिन मुझे अपने ही भीतर जाना है, तो वहाँ कोई साधन नहीं जाएगा। अगर पराए के पास पहुंचना है तो बीच में सेतु चाहिए लेकिन अगर अपने ही पास पहुँचना है, तो किसी सेतु की कोई जरूरत नहीं। अगर दूर जाना है तो चलना पड़ेगा और अगर अपने ही पास आना है, तो चलने की कोई भी जरूरत नहीं। चले कि भटक जायेंगे। चले कि दूर निकल जायेंगे। जो अपने को खोजने के लिए चलेगा वह दूर निकल जायेगा, पास नहीं आयेगा।

आनन्द सीधा ही चाहा जा सकता है उसका कोई साधन नहीं है। क्योंकि वह हमारा स्वभाव है। हमें मिला ही हुआ है जो मिला ही हुआ है उसे सिर्फ पहचानना पड़ता है, उसे पाना नहीं पड़ता। आनन्द को अर्जित करना नहीं होता। वह है ही। सिर्फ उसे पहचानना ही पड़ता है। आँखभर भीतर मुड़ जाए तो काफी है। खजाना घर में ही गड़ा है। हम बाहर खोजते हैं। मकान के चारों ओर दौड़ रहे हैं। पूरी जमीन पर चक्कर लगा रहे हैं। वह नहीं मिल रहा है, मिलेगा भी नहीं। जितना ही चक्कर में हम बढ़ते जाएंगे, मिलने की सम्भावना उतनी ही क्षीण होती जायेगी। जब आदमी दौड़ता है उसे खोजने जो उसके भीतर है, और दौड़कर नहीं पाता क्योंकि दौड़कर पा नहीं सकता। ठहर कर पा सकता है। जब दौड़ता है उसे पाने को तो उसका तर्क कहता है कि तुम धीरे-धीरे दौड़ रहे हो। इसलिए नहीं मिल रहा है। तेजी से पूरी ताकत से दौड़े। अब फिर भी नहीं मिलता जो तर्क कहता है कि तुम गलत रास्ते पर आगए हो। रास्ता बदल दिया और तेजी से दौड़े, लेकिन वह फिर भी नहीं मिलता तो दौड़ने का तर्क आखिरी बात कहेगा कि आनन्द है ही नहीं इसलिए नहीं मिलता।

नहीं मिलता है, क्योंकि तुम खोजते हो, क्योंकि तुम दौड़ते हो।' मिल सकता है, रुक जाओ, ठहर जाओ, रोक लो वृत्ति को और स्वरूप में ठहर जाओ यही स्वरूप है यही आनन्द है।

—०—

श्री हनुमान टीला (शामली)

अस्तित्व और जीर्णोद्धार

[श्री पं० मरजीत शर्मा, गाँधी चौक, शामली]

मेरी आँखों के सामने एक दृश्य घूम रहा है, उस दृश्य की स्मृति मुझे रह-रहकर आ रही है, हृदय गद्गद् हो रहा है। जबकि हमने अपने कर्णधार योग-योगेश्वर श्री सद्-गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के प्राथमिक दर्शन प्राप्त किये थे।

जिला सहारनपुर में ननौता एक छोटा सा कस्बा है उसमें भाई ब्रजमोहन जी निवास करते हैं। उन्होंने आनन्दकन्द श्री गुरुदेवजी को योग प्रचारार्थ अपने गांव में बुलाया हुआ था, साथ ही श्री गुरुदेवजी के पवित्र आगमन के समय पर 'शामली' से श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल' को भी बुलाया। मण्डल ने श्री भाई ब्रजमोहनजी के आयोजित सत्संग में धूमधाम से संकीर्तन किया—वह प्रथम दिवस था जबकि हमने अपने गुरुदेवजी के दर्शन प्राप्त किये। उसके बाद पारस्परिक प्रेम बढ़ता चला गया। श्री गुरुदेवजी ने हम सभी बालकों को "श्री सिद्ध गुफा, सवाई" बुलाया। श्री रामनवमी का शुभ अवसर था। श्री गुरुदेवजी के मुखारविन्द से योग-सिद्धान्तों पर सारगर्भित प्रवचन सुने जिनको सुनकर हृदय गद्गद् हो गया। उसके पश्चात् ही 'ऋषिकेश योग साधन आश्रम' का उत्सव था। श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल के सभी सदस्य वहाँ गये हुए थे; सभी के मन में ये उल्लास पैदा हुआ कि श्री गुरुदेवजी को शामली बुलाया जाय किन्तु श्री गुरुदेवजी से सीधी प्रार्थना करने में बहुत संकोच लगता रहा। आदरणीय भाई श्री सूरजप्रसादजी के द्वारा श्री गुरुदेवजी के चरणारविन्दों में प्रार्थना पहुँचाई और उन्होंने परमानुग्रह पूर्वक शामली आने की स्वीकृति प्रदान कर दी। सन् १९६३ अगस्त के महीने में जन्माष्टमी से दो या तीन रोज पहले श्री गुरुदेवजी ने शामली पधारने की कृपा की। अवर्णनीय शोभा थी। श्री संकीर्तन मण्डल के लड़के शामली स्टेशन से १॥—२ फर्लांग की दूरी पर आउटर सिगनल पर ही पहुंच गये थे। वह दृश्य बहुत ही दर्शनीय था। शामली रेल्वे स्टेशन का प्लेट-फार्म जनता की भारी भीड़ से पूर्ण रूप से परिपूरित था। शनैः शनैः गाड़ी स्टेशन के प्लेट फार्म पर पहुँची। स्टेशन का प्लेट फार्म जय-ध्वनियों से गूँज उठा।

योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल की जय, स्टेशन के चारों ओर भीतर और बाहर यही ध्वनि गूँज रही थी। आकाश-मण्डल में बादल छाये हुए थे। कभी-कभी धीमी-धीमी वर्षा की फुहारें पड़ रही थीं। शामली के सत्संग प्रेमी भाई बड़े प्रेम और चाव भरकर भव्य स्वागत के साथ श्री गुरुदेवजी को स्टेशन से बाहर लाये। लोगों का उत्साह दर्शनीय था। भारी भीड़ चरण-स्पर्श की लगन में आगे को बढ़ती थी किन्तु उनके चरणों तक कोई पहुँच नहीं पाता था। उस समय श्री गुरुजी के साथ थे—श्री भाई सूरजप्रसादजी, श्री भाई लक्ष्मीनारायणजी, श्री भाई केशवदेवजी व अन्य और आस-पास के बहुत से भाई। स्टेशन से ही शोभा-यात्रा आरम्भ होगयी। श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल के सत्संगी भाइयों के सहयोग से निकाला हुआ जुलूस बहुत ही शोभा देता था। शामली के मुख्य-मुख्य बाजारों से उमंग और उत्साह के साथ से जुलूस ले जाया गया एवं शाम के समय वैश्य धर्मशाला में जुलूस पहुँचा। धर्मशाला में पहले से ही बहुत बड़ा पण्डाल शामियाना लगाकर सजाया गया था। सुन्दर-सुन्दर चित्रकारियों से तोरण द्वार सजाये गये थे। पण्डाल में लाकर श्री गुरुदेवजी को एक भव्य सिंहासन पर बैठाया गया। जो पहले से तैयार कर लिया गया था किन्तु शोभा-यात्रा की सारी भीड़ ज्यों की त्यों जमा थी। उन सबमें से एक भी व्यक्ति इधर-उधर नहीं गया। उस समय उपस्थित थे नगर के प्रमुख नागरिकों में से लाला शलेखचन्द्रजी चेयरमैन, चौधरी श्रीपाल जी, श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल के प्रधान एवं अन्य सभी सदस्यगण सभी की उपस्थिति में श्री गुरुदेवजी ने अपना प्रारम्भिक भाषण प्रारम्भ किया और उसमें बतलाया, मनुष्य सत्संग से क्या-क्या लाभ उठा सकता है। श्री गुरुदेवजी के पहले भाषण का ही यह प्रभाव रहा कि हमारे श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल के प्रधान बाबू श्रीपाल जी ने हम लोगों से दीक्षा दिलाने का आग्रह किया और ऐसा ही हुआ भी। श्री गुरुदेवजी से आग्रह करके उनको दीक्षा दिलाई गई। श्री भाई श्रीपाल जी उन दिनों चेयरमैनी का चुनाव लड़ रहे थे। श्री गुरुदेव जी के इस चरणों में उनकी सफलता के लिए प्रार्थना की गई। भाई श्रीपाल जी अपने चुनाव में विजय प्राप्त करें, श्री गुरुदेवजी ने बड़े उल्लास के साथ आशीर्वाद दिया जिसके फलस्वरूप वे चुनाव जीत गये और उन्होंने अपने मनोभिलषित पद को पा लिया। श्री गुरुदेवजी का शामली में यह पहला ही कार्यक्रम था; प्रोग्राम बहुत धूम-धाम से चला।

"कामये [illegible]खतप्तानां प्राणिनां दुःख विनाशनम्" की उक्ति के अनुसार लोगों की चिकित्सा करना। हमारे गुरुदेवजी का यह नियम तो

पहले से ही चलता है कि वह निःशुल्क चिकित्सा करते हैं और योग के सरल साधनों द्वारा लोगों को अनुपम लाभ पहुँचाते हैं। वैश्य धर्मशाला का वह दृश्य देखते ही बनता था कि सैकड़ों स्त्री पुरुष तथा बाल-वृद्ध और युवा धड़ाधड़ नेतियाँ कर रहे थे, नाक से दूध पी रहे थे, जीवन तत्व साधन कर रहे थे एवं अन्य सभी प्रकार के बन्ध और मुद्रायें श्री गुरुदेवजी ने जिसको जैसे बतलाया था, कर रहे थे। साधन करने वालों की इतनी भीड़ थी कि प्रातः सात बजे से लेकर दोपहर के दो बजे तक लाइनों के रूप में भीड़ लगी रहती थी। अन्ततः सभी के खान-पान का ख्याल रखकर यह प्रक्रिया दूसरे दिन के लिए स्थगित कर देनी पड़ती थी। लगभग एक सप्ताह श्री गुरुदेवजी का यह कार्यक्रम बड़ी धूम-धाम के साथ चलता रहा। इस ८–१० दिन के कार्यक्रम के अन्दर लोगों के हृदय इतने आकर्षित हो चुके थे कि वे श्री गुरुदेवजी को छोड़ना नहीं चाहते थे किन्तु 'परोपकाराय सतां विभूतयः' के नियमानुसार श्री गुरुदेवजी को दिल्ली जाना था अतः वहाँ के कार्यक्रम हेतु वे दिल्ली चले गये और अपने योग-प्रचार के कार्यक्रमों में लग गये। इस थोड़े दिन के कार्यक्रम में ही शामली के अन्दर काफी लोगों ने योग दीक्षायें ग्रहण की एवं श्री गुरुदेवजी के चरण-कमलों में अपने को सौंप दिया। पहले प्रचार-कार्य-क्रम में ही काफी लोग योग-मार्ग में दीक्षित हो चुके थे। दीक्षित और अदीक्षित सभी के अन्दर यह भावना दृढ़ हो गई थी कि श्री गुरुदेवजी को पुनः एक बार शामली बुलाया जाय किन्तु प्रयत्न करने पर भी ऐसा नहीं हो सका। श्री गुरुदेवजी कार्यक्रमों में इतने व्यस्त रहते हैं कि वह पूरे वर्ष के पहले अपने शामली के बच्चों को प्रोग्राम दे ही नहीं सके। पूरे एक वर्ष के बाद श्री गुरुदेवजी के चरण-कमलों में प्रोग्राम के लिए आग्रह किया गया तो श्री गुरुदेवजी पुनः शामली पधारे। प्रथम वर्ष की भाँति इस वर्ष भी योग-प्रचार क्रम अत्यन्त धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। एक दिन श्री गुरुदेवजी ने हर्षोल्लास में आकर के कहा कि यहाँ प्रचार काफी धूमधाम के साथ बढ़ रहा है: अतः यहाँ आश्रम अवश्य कायम होना चाहिए। श्री गुरुदेवजी ने जिस समय अपने मुखारविन्द से यह वचन निकाले उस समय उनके चरण-कमलों में शहर के गणमान्य स्वर्गीय लाला सुलेखचन्दजी उपस्थित थे। उन्होंने श्री गुरुदेवजी से प्रार्थना की कि महाराजजी! यहाँ नहर पर एक बगीची है, वह एक सज्जन भुलवा मुखिया के अधिकार में है, हम उनसे कह देंगे और वहाँ आश्रम कायम कर लेंगे। श्री गुरुदेवजी ने प्रसन्न मन से उनके प्रश्न का उत्तर दिया— कोई बात नहीं नहर वाली बगीची में ही

या और किसी दूसरी जगह; किन्तु होना अवश्य चाहिए। दूसरे दिन शाम के समय श्री गुरुदेवजी के चरण-कमलों में घूमने जाने की प्रार्थना की गयी और उन्हें भ्रमणार्थ हनुमान टीले की ओर ले आया गया। श्री गुरुदेवजी हनुमान टीले पर पहुँचे। उन्होंने उस स्थान को बड़े गौर के साथ देखा। चारों तरफ घूमकर स्थान को देखते रहे। उस समय हनुमान टीला बहुत जीर्ण-शीर्ण हालत में था। तालाब भग्नावस्था पड़ा था। श्री गुरुदेवजी ने देखकर हम लोगों से कहा—मालूम पड़ता है यह स्थान महापुरुषों से सेवित रहा है; चमत्कृत स्थान है। तुम लोग इसके नवनिर्माण म लग जाओ। तीर्थ के रूप में इसको चमकाओ; यह अवश्य चमक उठेगा। यहाँ पर जोरों पर सत्संग चलते रहेंगे, महात्मा लोग आते रहेंगे; तुम्हारा ये पुरुषार्थ सफल हो जायेगा। श्री गुरुदेवजी के मुख से निकली हुई इस वाणी को सुन करके हम सबको आश्चर्य-सा हो गया कि श्री गुरुदेवजी यह क्या कह रहे हैं? कई लाख रुपये का व्यय कर देने पर इस स्थान का पुनः नवनिर्माण किया जा सकता है, इतना रुपया कहाँ से आयेगा? यह कैसे सम्भव हो सकता है? हम सबने उसी समय श्री गुरुदेवजी से प्रार्थना की कि प्रभुजी यह कैसे सम्भव हो सकता है? श्री महाराज जी ने उत्तर दिया—तुम लोग प्रयत्न में लग जाओ, यह सब कुछ अवश्य ही सम्भव होगा। तुम देखोगे कि तुम्हारा पुरुषार्थ सफल हो जायेगा।" श्री गुरुदेवजी के इन वचनों ने विद्युत का काम किया। हम लोग प्रयत्न में लग गये। श्री गुरुदेवजी ने आज्ञा प्रदान की कि आश्रम भी तुम यहीं पर कायम करो। गुरुदेवजी के इस आज्ञा को प्राप्त करके हमने रविवार का सत्संग लगाना प्रारम्भ कर दिया और अपना नैत्यिक व्यायाम भी वहीं पर करना आरम्भ कर दिया। हनुमान टीले का सुधार हम सभी लोगों ने अपना लक्ष्य बना लिया। शनैः शनैः हमारा साप्ताहिक सत्संग बढ़ता चला गया! हनुमान टीले का जीर्णोद्धार का प्रस्ताव होने लगा। भाई श्रीपाल जी बहुत अधिक अपने निजी कार्यों में व्यस्त रहने लगे। वे मण्डल को अपना समय अधिक नहीं दे सके किन्तु जितने भी सदस्य शेष थे उनमें हनुमान टीले के जीर्णोद्धार की भावना अधिकाधिक बढ़ती चली गयी। हमने अपनी कमेटी का नव-निर्वाचन किया, उसमें श्री ओमकुमार शर्मा को प्रधान चुनकर हमने अपना कार्य आरम्भ किया। जब से श्री ओमकुमारजी के हाथों में समिति का यह कार्य आया तब से अब तक उत्तरोत्तर विकास होता चला गया। हनुमान टीले पर योगसाधन आश्रम बन चुका है जिसकी श्री गुरुदेव जी ने प्रबन

आज्ञा दी थी। योग साधन आश्रम के हाल-कमरे में बहुत सुन्दर-सुन्दर चित्र शीशे में लगाकर जड़ाये गये हैं जिनमें से हमारे सद्गुरु देव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज एवं जगद्गुरु शंकराचार्यादियों के चित्र मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त एक विशाल धर्मशाला जिसके लगभग १० या १२ कमरे बन चुके हैं। लगभग २० और बनने शेष हैं। ग्यारह मन्दिरों की नींव भर चुकी है तालाब के बीच एक शिवालय भी बन चुका है इसके अतिरिक्त दो सुन्दर ट्यूबवेल भी तय्यार हो चुके हैं। एक सुन्दर विद्यालय की स्थापना हो चुकी है जिसमें सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ रहे है। इसके अतिरिक्त रामलीला मैदान, शस्त्रास्त्र शिक्षणकेन्द्र, व्यायाम शाला चालू कर दिये गये हैं। इनके कुछ-कुछ भाग बन चुके हैं कुछ अवशेष हैं विजयदशमी के पर्व पर यहाँ एक बहुत बड़ा महोत्सव मनाया जाता है जिसमें देश की महान विभूतियें — यथा जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीकृष्ण बोध आश्रम जी महाराज, अनन्त श्री द्वारिकापीठाधीश्वर श्री निरञ्जन देवजी तीर्थ, श्री करपात्रीजी, विद्यामार्तण्ड महामहोपाध्याय श्री माधवाचार्यजी शास्त्री, श्री भीमानन्दजी महाराज, योग योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज (योगप्रशिक्षण केन्द्र, श्री सिद्धगुफा सवाई, आगरा) पं० रामेश्वराचार्य शास्त्री तर्क रत्न, श्री अनिरुद्ध पाण्डेय जिलाधीश; श्री राजेन्द्रनाथजी, श्री प्रकाश-कृष्ण कमिश्नर (मेरठ), हिन्दुस्तान समाचार समिति के प्रबन्धक सम्पादक श्री बालेश्वर प्रसाद अग्रवाल, सेठ श्री विद्याभूषण जी, श्री विजयकुमार मेहरोत्रा (दिल्ली मुख्य कार्यकारिणी परिषद्) श्री रामचन्द्र विकल (कृषिमन्त्री उत्तरप्रदेश), गृहमन्त्री उमाशंकर दीक्षित, भूतपूर्व उत्तर प्रदेश मुख्यमन्त्री श्री चौधरी चरनसिंह, श्री दीवान प्रतापचन्द्र, सुशीलकुमार जैन (सम्पादक नवभारत टाइम्स दिल्ली), श्री मंगलपति त्रिपाठी एवं श्रीमायापति त्रिपाठी। आदि-आदि महानुभाव पधार चुके हैं; इसके अतिरिक्त व्यायाम शिक्षणकेन्द्र के प्रचारक भारत के प्रसिद्ध पहलवान (गुरु हनुमान अखाड़ा), दिल्ली के पहलवान सुरेश कुमार, सत्यपाल, योगेन्दर व मास्टर चन्दगीराम, अखाड़ा पुरुषोत्तम आदि-आदि गण्यमान व्यक्ति इस संस्था में पधारे। श्री परम कृपासागर गुरुदेवजी की अनुकम्पा से जहाँ हम लोग सोचते थे कि हम अपने गुरुदेवजी के वचन को किस प्रकार निभाये, एवं दो-चार हजार रु० लगाने की भी ताकत नहीं दिखाई देती थी। आज उन्ही की कृपा के फलस्वरूप कई लाख रुपया लग चुका है और हनुमान टीले को देखने वाले लोग वाह-वाह करते हैं। इस समय मैं यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि श्री बालकृष्ण संकीर्तन

के सदस्यों ने जो कार्य किया वह तो किया किन्तु भाई श्री ओमकुमार शर्मा, प्रधान श्री बालकृष्ण संकीर्तन मण्डल ने अपना जीवन ही लगा दिया। उन्होंने मण्डल का नेतृत्व स्वीकार करके संस्था को चार चांद लगा दिये। मुझे इस लेख को लिखते हुए अपने गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज जी के वचन बार-बार स्मरण आ रहे हैं कि "तुम कदम बढ़ाओ, तुम्हें अवश्य-अवश्य सफलता मिलेगी; यह तीर्थवत् चमक उठेगा।" श्री गुरुदेवजी के मनः संकल्प सफल हुए। हनुमान टीले पर विविध प्रकार के चमत्कार होते रहते हैं। कृपायें बरसती रहती हैं, जिनका मैं किसी दूसरे लेख में वर्णन करने का प्रयत्न करूँगा।

गुरुदेव के चरण

[श्री लक्ष्मीशंकर अवस्थी]

मन भूलि मत जइयो गुरुदेव के चरन !
सद्गुरुदेव के चरन, प्रभुदेव के चरन !

जिन चरनन से गंगा निकरी, जग का कष्ट मिटाई,
सोई चरन मेरे सद्गुरु के मीरा उर में लाई !
भव से तारन हैं तरन, गुरुदेव के चरन,

छुवत चरन के तैरी अहिल्या, श्रापित मुनि की नारी !
रामलाल प्रभु चरन पकरि ले, छूटत बन्धन भारी,
मेटत उर की है तपन, गुरुदेव के चरन !

जिन चरनन ने रहस रचायो, गोकुल गाँव मझारी,
सोई चरन हैं योगेश्वर के, जग को मंगलकारी !
मिलि हैं गीता के वचन, गुरुदेव के चरन,

जोई चरन कैलाश बिराजे, आशुतोष त्रिपुरारी !
छोड़ हिमालय भू पर आये, करी कृपा प्रभु भारी,
देते ज्ञान की पवन, गुरुदेव के चरन !

जिन चरनन में सबरी रम गई, छूटे बन्धन सारे,
वही चरन हैं योगेश्वर के, श्री गुरुदेव हमारे !
पावै शान्ति की शरन, गुरुदेव के चरन !

श्री हनुमान टीला शामली

पाठशाला एवम् धर्मशाला—

श्री शिवालय

वशीकरण चित्त

जो मनुष्य भगवान के ज्ञान और उसकी उपासना में बहुत आगे बढ़ जाता है उसके मन में ज्ञान के साथ-साथ दूसरों को अपने पीछे चलाने की शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। वह स्वयं किसी को अपने पीछे चलने की प्रेरणा नहीं करता, प्रत्युत लोग अपने आप उसके विचारों के अनुकूल चलना आरम्भ कर देते हैं। यह आकर्षण की शक्ति उनमें उनके उच्च विचारों के कारण उत्पन्न हुई। उनके चित्त में एक विशेष आकर्षण शक्ति होती है इसीलिए ऐसे चित्त को वशीकरण चित्त कहते हैं।

ऐसा वशीकरण चित्त उसी प्रकार मनुष्य को अभ्युदय के मार्ग में आगे ले जाता है जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को अभीष्ट मार्ग पर ले जाता है।

—स्वामी आत्माराम

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज, आगरा-?